

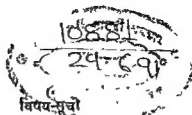


शुनया

# कार्ल माक्स

१८४४ की  
अर्थशास्त्र  
तथा दर्शन 10881  
संबंधी 29-691  
पांडुलिपियां





. . . . . ५

### कार्तिक मास

१८४४ वी अर्धशास्त्र तथा दर्शन संबंधी  
पाठ्यलिपिया

. . . . .	१५
[तुल्यि]	२१
मजदूरी . . . . .	२१
साम . . . . .	४४
पूजी . . . . .	४४
पूजी का साम . . . . .	४५
धर्म पर पूजी का प्रभुत्व और पूजीपति के अभिप्रेरक . . . . .	४९
. पूजियों का संचयन और पूजीपतियों में प्रतिद्वंद्विता	५३
का किराया (समान) . . . . .	७१
रत धर्म] . . . . .	८६

[दूसरी पांडुलिपि] . . . . .	१
[पूजी तथा धर्म का वैयक्तिक। मूल-मपति और पूजी]	१
[तीसरी पांडुलिपि] . . . . .	१
[निजी मपति और धर्म। गहनोक्ति पर्यन्त निजी मपति की मति के उत्पाद के रूप में] . . . . .	१
[निजी मपति और कम्युनिज्म] . . . . .	१
[निजी मपति के शासन के अन्तर्गत मानव परेक्षाएँ तथा धर्म विभाजन] . . . . .	१
[द्रव्य की मपति] . . . . .	१
[हेगेलीय द्वन्द्ववाद तथा समग्ररूपेण दर्शन की ममीक्षा]	२

### द्विष्यधिया तथा निर्देशिकाएँ

द्विष्यधिया . . . . .	२
नाम-निर्देशिका . . . . .	२
साहित्यिक एवं पौराणिक नामों की निर्देशिका . . . . .	२

श्री जुबिली जर्नल २०३२ ई. वी

२६ २१२२४, २०२५-२६

प्रकाशकीय दिनांक २९-०६-२०२५

'१८४४ की धर्मशास्त्र तथा दर्शन संबंधी पाठ्यलिपियाँ' मार्क्स के सबसे प्रारंभिक धर्मशास्त्रीय सन्लेखन का कच्चा मसविदा, उनका बुरुंधा समाज के आर्थिक मूलधारों और बुरुंधा धर्मशास्त्रियों के विचारों की अपनी द्वैतात्मक-भौतिकवादी तथा कम्युनिस्ट निष्कर्षों पर आधारित समालोचनात्मक परीक्षा का पहला प्रयास है। साथ ही यह कुनि नये दार्शनिक, आर्थिक तथा ऐतिहासिक-राजनैतिक विचारों के, सर्वहारा के समग्र विश्वदृष्टिकोण के सन्लेखन की प्रक्रिया की प्रतिबिम्बित करती है।

मार्क्स ने 'धर्मशास्त्र तथा दर्शन संबंधी पाठ्यलिपियाँ' की रचना १८४४ की गरमियों में वेस्टम में की थी। उस समय तक वह समाजशास्त्रीय जर्मनी में, दूसरे देशों में अवस्थाओं का, फ्रांसीसी क्रांति के इतिहास तथा अनुभव का अध्ययन कर चुके थे और पूर्ववर्ती दार्शनिक सिद्धांतों, सर्वोपरि हेगेल के सिद्धांत, बुरुंधा धर्मशास्त्र के आनुभविक प्रमाण तथा सैद्धांतिक निष्कर्षों, यूटोपियाई समाजवादियों के विचारों का समालोचनात्मक पुनरावलोकन कर चुके थे। इनके परिणामस्वरूप उन्होंने धर्म के नये क्रांतिकारी वैज्ञानिक विश्वदृष्टिकोण के कुछ आवश्यक सिद्धांतों की खोज की। अपने 'हेगेल की विभिन्नताओं की समीक्षा में योगदान' (जिसे उन्होंने १८४३ की गरमियों में ओउबनाय में लिखा था) और *Deutsch-Französische Jahrbücher* (जिसे एचमात्र और

दुहरा धक कृष्णरी, १८४४ में प्रकाशित हुआ था) के नि-  
मेयों में उन्होंने दिखाया था कि समाज के विकास का  
आधार भौतिक जीवन-मध्य होने है, न कि ईश्वर का  
—यथा राज्य के रूप। हमने समाज का आदिम स्तर का

विकास के क्षेत्र में था गया। मानवजाति को सारे उपजा

भूत करने के लिए केवल राजनीतिक जाति ही नहीं।

लेकिन उसके ऊपर एक महान सामाजिक जाति की आवश्यकता

। अपने मन्त्रिपरिषद् में रूप लेने विचारों को राष्ट्र के

। मार्क्स ने दिखाया कि राजनीतिक जाति साम्यवाद के

। के अलावा और कुछ भी नहीं बदलती है, जब कि

। सामाजिक जाति मुख्यतः सामाजिक आधार को प्रभावित

। करती है। और मार्क्स ने यह समझ लिया था कि इस जाति

। मुख्य संचालक सर्वहारा है। उन्होंने—सभी सामान्य रूप

। ही—मेहनतकश वर्ग के महान ऐतिहासिक भूमिका

। मान के विचार को व्यक्त किया।

। '१८४४ की धर्मशास्त्र तथा दर्शन संबंधी पाठ्यलिपि

। र्स द्वारा अपनी जातिकारी शिक्षा के निरूपण में उद्य

। नये कदम को प्रतिबिम्बित करती हैं।

। पेरिस में लिखित ये पाठ्यलिपिया सामाजिक विज्ञान

। विषय क्षेत्रों को अपनी परिधि में लेती हैं। इन सभी क्षेत्रों

। मार्क्स ने भौतिकवादी दृष्टात्मक पद्धति को ज्ञान के प

। उपकरण की तरह इस्तेमाल और विकसित किया। समाज

। का विकास की संरचना और विकास की समझ को एक न

। सिद्ध पर पहुंच गये। उन्होंने यथा पहली बार सामाजिक

। क्रिया में उत्पादन की निर्णायक भूमिका पर बल दिया था।

। उन्होंने दिखाया कि निजी संपत्ति और धर्म विभाजन समाज

। के वर्गों के भौतिक आधार हैं। बुर्जुआ समाज के आर्थिक

ने का विशेषण करते हुए उन्होंने इस पर जोर दिया  
 पूँजीवाद के वर्ग-विरोध जन के पूँजीपति स्वामियों के  
 षो में सर्वोदित होने जाने के साथ-साथ परिवर्धित गहनतर  
 ले जायेंगे। मनुष्य का उत्पादक श्रम और उसके सामाजिक  
 बंध विज्ञान तथा सभृति पर जो प्रभाव डालते हैं, उसके  
 ारे में मार्क्स के विचार अत्यंत मर्मग्राही हैं। उन्होंने निजी  
 पति के प्रभुत्व के परिणामस्वरूप श्रमजीवी जन के केवल  
 ामाजिक दासकरण की प्रक्रिया ही नहीं, बल्कि सांत्तिक  
 रिद्धीकरण की प्रक्रिया पर भी विशेषकर ध्यान दिया।

इन पाइनिषियों में मार्क्स ने धार्मिक चिंतन के विषाम  
 का मूल्यांकन करने के लिए भीतिकवादी मानदंड प्रस्तुत किया  
 और यह स्पष्ट किया कि यह एक ऐसा विषाम है कि जो  
 बौद्धिक क्षेत्र में वास्तविक धार्मिक संबंधों के उद्विकास का  
 प्रतिबिंब होता है। मार्क्स के अनुसार विज्ञान का विकास  
 स्वयं समाज के विकास भी पुनरावृत्ति करता है। वह प्रमुख  
 बूर्जुआ धर्मशास्त्रियों—ऐडम स्मिथ, रिकार्डों, आदि—की  
 शिक्षा को धर्मशास्त्र की उच्चतम उपमविधि समझते थे।  
 लेकिन यद्यपि उन्होंने सभी मूल्य के श्रम विज्ञान का विशेषण  
 करना शुरू नहीं किया था, फिर भी उन्होंने उनके विचारों  
 की सीमाओं पर ध्यान दिया था—वर्णित धार्मिक परिपटनाओं  
 के वास्तविक आंतरिक संबंधों तथा गत्यात्मकता को न समझ  
 पाना और उनके प्रति उनका तत्त्वमीयासीय दृष्टिकोण।  
 मार्क्स ने पूँजीवाद के आधार तथा अमानुषिक लोपण के  
 संबंधों को कृत्रिम रूप से चिरतन बनाने के उनके प्रयामों  
 में बूर्जुआ धर्मशास्त्रियों की मानवतावादविरोधी प्रवृत्तियों को



[illegible]

'१८४४' की अर्थशास्त्र तथा दर्शन संबंधी पाण्डित्यिया' में एक वैद्रीय समस्या वियोजन (estrangement) अथवा हतरीभवन (alienation) की समस्या है। हेगेल ने इस संकल्पना का व्यापक उपयोग किया था। लेकिन उनके लिए हतरीभवन वास्तविक जीते-जागते लोगों का नहीं, बल्कि

। प्रत्यय का होता है। कायरबाज भी अपने धर्म के उद्भव  
मिथान में इस जैसी सक्कना को ही लेकर चलते हैं  
( उमे समूर्त मानव के सार्विक ( जातिगत ) गुणों के  
रीभवन में परिणत कर देने हैं, जिन्हें एक आभासी देवत्व  
अध्यारोपित कर दिया जाता है।

मार्क्स ने इतरीभवन की सकल्पना का प्रयोग सामाजिक  
धर्मों के गहन विश्लेषण के प्रयोजनार्थ किया। उनके लिए  
रीभवन उन सामाजिक सवधों का अभिलक्षण था, जिनके  
तहत लोगों के जीवन और क्रियाकलाप की अवस्थाएँ,  
य वह क्रियाकलाप, और लोगों के बीच सवध एक ऐसी  
क्रि के रूप में प्रकट होते हैं, जो लोगों के लिए इतर  
श प्रतिकूल है। घन मार्क्स के निर्वचन में इतरीभवन विभी  
। प्रचार कोई इतिहासोपरि परिघटना नहीं है। मार्क्स  
उरीभवन को निजी सपत्ति तथा उसके द्वारा उत्पन्न की  
निवाली सामाजिक व्यवस्था के साथ जोड़नेवाले पहले  
पक्षि थे। उन्होंने समझ लिया था कि इतरीभवन पर केवल  
निजी सपत्ति तथा उसके सारे परिणामों के उन्मूलन द्वारा  
ही पार पाया जा सकता है।

इतरीभवन पर मार्क्स के विचार उनके "विद्योजित धर्म"  
। विवेचन में समाहित रूप में प्रकट होते हैं। "विद्योजित  
धर्म" की मार्क्सीय मकल्पना ने पूँजीवादी समाज में धर्मिक  
री वासावस्था का, उसके एक निश्चिन धर्म में बधे होने  
का, उस पर धोरे जानेवाले धर्म के परिणामस्वरूप उसके  
दैहिक तथा नैतिक भय पनन का, "उसके धर्म के लोप"  
( इस पुस्तक का पृ० १०५ देखें ) का समाहार किया।

मार्क्स ने जोर दिया कि धर्म के किसी विषय में समाविष्ट  
ऐसा धर्म, जो मूर्त हो गया है, धर्म का वन्तुकरण है।

घोर निजी शक्ति द्वारा ज्ञानित मयाम में धन का वस्तुस्थान  
 अनिवार्य धर्मिक को जीवन के मानदों से वंचित बना  
 है, उसे अपने धर्म की वस्तु का दाग बना देता है। इनके  
 धर्म का उत्पाद उसके लिए एक इतर उत्पाद बन जाता  
 है। धर्म का वस्तुकरण धर्म का इनरीमयन बन जाता है।  
 घोर वस्तुगत धर्म इनरीमयन धर्म बन जाता है। धर्म प्रकृत  
 अपने सुजनारम्भक मनस्य को गवा देती है घोर धर्मिक के लिए  
 मातृस्यक नहीं रहती है। धर्मिक के पास इसके लिए कोई  
 प्रेरक नहीं होने कि वह मीदर्य के निरुपों घोर मातृस्यक  
 आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन करे। वह अपने शरीर  
 तथा मानसिक शक्ति का स्वेच्छया विकास नहीं करता।  
 वह उनका निग्रह करता है, अपने तन को ज्ञान देना।  
 घोर मन को नष्ट करता है। वह पशुवत आदिम आवश्यकताओं  
 के साथ पशु की अवस्था में पहुँच जाता है घोर मानवजाति  
 में सम्मिलित संशयो को गवा देता है। वह अपना नहीं र  
 जाता है, बल्कि पूजी के स्वामी का हो जाता है। वह स्व  
 अपनी वैश्वियों को बनाता है (इस पुस्तक के पृ० १०४, १०  
 देखें)।

‘१९४४ की प्रवेशास्त तथा दर्शन संबंधी पाठ्यलिपि  
 में प्रस्तुत “वियोजित धर्म” की संकल्पना पूजी द्वारा धर्म  
 के धर्म के वियोजन (appropriation) के भागी मार्क्स  
 सिद्धान्त की प्रारम्भिक धर्मव्यक्ति, आगे चलकर, विशेष  
 ‘पूजी’ में, विकसित किये जानेवाले महत्वपूर्ण विचारों :  
 तरफ एक प्रारम्भिक उपनिषत् की।

इनरीमयन की संकल्पना का व्यापक उपयोग मार्क्स :  
 सार्विक सिद्धा के निरूपण की प्रारम्भिक अवस्था का विशिष्ट  
 ————— शक्तियों से इस संकल्पना का स्वरूप

औरी हूँ तक पूँजीवाद के धार्विक सबधों के सार, उबरती  
 १११ के शोषण, को अधिक पूर्णता और अधिक स्पष्टता के  
 ११२ प्रकट करनेवाले धन्य, अधिक ठोस निधारिकों ने से  
 ११३ किया। तथापि, निजी संपत्ति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था  
 ११४ शोषक, अमानवीय स्वरूप और उस समाज में मेहनतकश  
 ११५ जनसाधारण की बदहाली को दार्शनिक रूप में सामान्यीकृत  
 ११६ व्यक्ति की तरह इसका मार्क्स की उत्तरवर्ती कृतियों  
 ११७ की प्रयोग होता रहना है।

१ '१८४४ की अर्थशास्त्र तथा दर्शन सबधी पाण्डुलिपिया'  
 ११८ सन्निहित सैदानिक सामान्यीकरण पूँजीवादी उत्पादन  
 ११९ प्रणाली का वैज्ञानिक विश्लेषण करने, उसके अन्तर्निहित  
 १२० अंतर्विरोधों का निर्धारण करने, उसकी गति के नियम का,  
 १२१ जो पूँजीवाद को अनिवार्य विनाश की ओर, उसकी एक  
 १२२ अन्तर्गत तथा अधिक विवेकपूर्ण सामाजिक ढाँचे से प्रतिस्थापना  
 १२३ की तरफ ले जा रही है, अध्ययन करने का पहला प्रयास  
 १२४ है। इसमें मार्क्स अपने इस निष्कर्ष को स्पष्ट कर  
 १२५ देते हैं कि निजी संपत्ति की व्यवस्था की केवल व्यापक  
 १२६ जनसाधारण के कारितकारी संपर्क के परिणामस्वरूप ही उलटा  
 १२७ जा सकता है। "निजी संपत्ति के विचार का अनुमूलन करने  
 १२८ के लिए कम्युनिज्म का विचार पूर्णतः पर्याप्त है। वास्तविक

घोर = निर्यंत्र तथा धार्मिक मनुष्य की, जिसकी सार्वजनिक  
 घोड़ी ही होती है, धार्मिक मरणा" की तरह की  
 की प्रकृति मनुष्योक्त सभ्यतावादी कम्युनिज्म के धार्मिक निर्यंत्र  
 की धार्मिकता की (इस पुस्तक का पृ० १४१ देखें)

माकस भूमि के निर्यंत्र संपत्ति से सौदा संपत्ति में परिवर्तित  
 किये जाने और धर्म के नापुष्टि रूपों के कुछ निर्यंत्र शक्ति  
 के जरिये कम्युनिस्ट पुनर्निर्माण के बारे में कुछ धार्मिक  
 सार्वजनिक टोकाए करने हैं। निम्नानों के लिए हमारी धार्मिकता  
 को दर्शाते हुए यह लिखते हैं "जमीन पर प्रयुक्त सार्वजनिक  
 बड़े पैमाने की भू-संपत्ति के धार्मिक मुद्दों का उपयोग करना  
 है। इसी तरह से सार्वजनिक मनुष्य के धर्ती के साथ धर्म  
 सूत्रों को भी, धर्म तकमालत आधार पर, भूदासत्व, धार्मिकता  
 और संपत्ति के भूखानापूर्ण रहस्यवाद द्वारा व्यवहित हुए बिना,  
 पुनर्स्थापित करता है, क्योंकि धर्ती धर्म खुदाफरोशी का  
 विषय नहीं रहती, और मुक्त धर्म और मुक्त उपयोग के  
 जरिये फिर से मनुष्य की वास्तविक धर्मिक संपत्ति  
 जाती है" (इस पुस्तक का पृ० ६२-६३ देखें)।

'१९४४ की धर्मशास्त्र तथा धर्म सबकी पाठ्यलिपिया'  
 में प्रस्तुत विचारों का मार्क्स तथा एंगेल्स की उत्तरवर्ती कृतियों  
 में और निरूपण तथा विस्तारण किया गया, विशेषकर उनकी  
 सहकृतियों, में, जैसे 'पवित्र परिवार, अथवा समाजोपनात्मक  
 धार्मिकता की समीक्षा', 'धर्म विचारधारा' तथा 'कम्यु-  
 निस्ट पार्टी का घोषणापत्र', जो वैज्ञानिक सर्वहारा विश्व-  
 दृष्टिकोण के वैज्ञानिक आधारों के निरूपण की परिणति था।  
 मार्क्स की पहली अर्थशास्त्रीय कृति, १९४४ की  
 पाठ्यलिपिया, कई वालों के लिहाज से मार्क्स की धर्मशास्त्र  
 का प्रस्थान बिंदु है, जिसका नाम 'पत्री' है।

कार्ल मार्क्स

१८४४ की अर्थशास्त्र  
तथा वर्शन संबंधी  
पांडुलिपियां<sup>१</sup>

१८८८१  
१८८८१



10881  
29-691

भूमिका

॥ XXXIX ॥ \* में *Deutsch-Französische Jahrbücher* में न्यायशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र की समीक्षा को हेगेलीय विधिमीमांसा की समीक्षा के रूप में प्रस्तुत करने की पहचान ही घोषणा कर चुका है।\*\* उसे प्रकाशन के लिए तैयार करते समय केवल परिवर्तन के विरुद्ध सशक्त आलोचना का स्वयं विभिन्न विषयों की आलोचना के साथ प्रतर्पण पूर्णतः अनुपयुक्त मिथ्या हुआ, जो तर्कों के विकास में बाधक था और अर्थग्रहण को कठिन बनाता था। इसके अन्तर्गत निरूप्य विषयों की बहुलता तथा विविधता को केवल मुद्रित सूत्रात्मक शैली से ही एक ही कृति में रूपांतरित किया जा सकता था, जब कि अपनी भारी में इस तरह के सूत्रात्मक प्रस्तुतीकरण ने मनमाने वर्गीकरण की छाप पैदा की होती। इसलिए मैं विधिशास्त्र, नीतिशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, आदि की समीक्षा को पृथक्, स्वतंत्र पुस्तिकाओं की भांति प्रकाशित करूंगा, और बाद में एक विशेष कृति में पृथक् भागों के अंतर्ग्रहण

---

\* ये रोमन संख्याएँ पाइलिपि में स्वयं मार्क्स द्वारा दी गयी थीं। इनके बारे में विस्तार से जानने के लिए टिप्पणी १ देखें। - स०

\*\* Karl Marks, *Contribution to the Critique of Hegel's Philosophy of Law. Introduction* - स०



को दमनकारी एक मंदरा मर्यादा की तरह उन्हें छिड़े हुए  
 राज्य का दमन करेगा, और यदि वे उस मर्यादा  
 पर नियंत्रण रखेंगे तो मर्यादा करने का प्रयत्न करेंगे।  
 इसलिए यह वादा जावेगा कि प्रत्युत ही वे राज्य  
 व्यवस्था तथा राज्य, विधिशास्त्र, नीतिशास्त्र, राज्य  
 जीवन, आदि के बीच एक नवदृष्टि की गिराई करेंगे जो सब  
 की गयी । कि जहाँ तक व्यवस्थाएँ इन विचारों को स्वी-  
 कृत में लेना है।

राजनीतिक व्यवस्थाओं की जानकारी रखनेवाले राज्य के  
 यह विद्वान विद्वाना बड़ाचिन ही मानकर है कि मेरे संसार  
 राजनीतिक व्यवस्थाओं के निष्ठापूर्ण समालोचनात्मक दृष्टि  
 पर आधारित पूर्णतः अनुभवशायित्व विवेचन में प्राप्त कि  
 गये हैं।

(अनभिज्ञ समीक्षक को, जो अपनी पूर्ण दृष्टि  
 और बौद्धिक बगानी को सचारात्मक आलोचक के उ-  
 "प्रोपियर्टी मुहावरे" की, या फिर "सर्वथा मुद्र, सर्व  
 निश्चित, सर्वथा समालोचनात्मक आलोचना", "के-  
 विधिक ही नहीं, अपितु सामाजिक-पूर्णतः सामाजिक  
 समाज", "सहन, पुत्रभूत जनपुत्र", "पुत्रभूत जनपुत्र  
 बेलीम प्रवक्ता" जैसे मुहावरों की बोझार करके छिपाने  
 कोशिश करते हैं, इस समीक्षक को इस बात का यह  
 प्रमाण अभी देना ही है कि वह अपने व्यवस्थास्त्रीय या  
 शारिक मामलों के अलावा ऐहिक मामलों के विवेचन में  
 कुछ योगदान कर सकता है।)

यह कहना अनावश्यक है कि अभीसी तथा अग्रज समा-

दिये के प्रस्ताव देने जर्मन समाजवादी कृतिओं का भी प्रयोग किया है। तथापि वाइटलिंग की रचनाओं के प्रस्ताव न विज्ञान में महत्व की एकमात्र मौलिक जर्मन कृतियों *Unundzwanzig Bogen* में प्रकाशित हेस्त के निबंध\* और *Deutsch-Französische Jahrbücher* में प्रकाशित, जहाँ जे इस कृति ['१८४४ की धर्मशास्त्र तथा दर्शन संबंधी इतिवृत्ति'] के आध्यात्मिक तत्वों को भी बहुत सामान्य रूप से दिखलाया है, एमेस्त द्वारा लिखित *Umriss zu einer Kritik der Nationalökonomie* ही है।

(इन लेखकों की कृषी होने के प्रस्ताव, जिन्होंने धर्मशास्त्र की तरफ समालोचनात्मक ध्यान दिया है, मनुष्ये तौर पर सकारात्मक आलोचना—और इसलिए राजनीतिक धर्मशास्त्र की जर्मन सकारात्मक आलोचना भी—आपनी वास्तविक संस्थापना के लिए फायरबाख की खोजों की आभारी है, *Anekdoten*\* में उनके *Philosophie der Zukunft* तथा *Thesen zur Reform der Philosophie* के विचार—उनका जो अनकहे उपयोग किया गया है, उसके बावजूद—कुछ लोगों की शुद्ध ईर्ष्या और घीरो की सचपन की नापसंदगी ने आलोचना की एक वाकामय साक्षिणी ही पैदा कर दी लगती है।)

सकारात्मक, मानकनावादी तथा प्रयुक्तवादी आलोचना का समारम्भ तिरक फायरबाख से ही होता है। फायरबाख की रचनाएँ, जो हेगेल की *Phänomenologie* तथा *Logik* के बाद आने ली ऐसी रचनाएँ हैं, जिनमें वास्तविक सैद्धांतिक

---

\* *Anekdoten zur neuesten deutschen Philosophie und Publicistik* — स०



की परिमीमाए भी, ताकि प्रेक्षक के भीर स्वयं अपने भी ध्यान को आलोचना और उसके उद्गमस्थान—हेगेलीय द्वंद्ववाद तथा समूचे तीर पर जर्मन दर्शन—के बीच निपटारा करने के अनिवार्य कायंभार से, अर्थात् आधुनिक आलोचना को स्वयं अपनी परिमीमा तथा अपरिस्थिगता के ऊपर उठाने की इस अनिवार्यता से मोड़ा जा सके। लेकिन अतः जब भी स्वयं उनकी दार्शनिक पूर्वकल्पनाओं की प्रकृति के बारे में सोचें (जैसे कायरबाख की) की जाती है, आलोचक ईश्वरमीमासाकार आशिक रूप में यह प्रकट करने हैं, मानो यह स्वयं ही यह व्यक्त है, जिसने यह किया है। यह आभास यह इन सोचों के परिणामों को लेकर और, उन्हें विकसित कर पाये बिना, उन्हें अब भी दर्शन की सीमाओं में बड़े क्षेत्रों की तरह आसू नारों की तरह फेंककर पैदा करते हैं। यह एहसासिक रूप में, प्रकृति, द्वैतवाद और सहायक तरीके से, ऐसी आलोचना के विषय हेगेलीय द्वंद्ववाद के उन तत्वों को रखकर, जो इस द्वंद्ववाद की आलोचना में अब भी विद्यमान नहीं हैं (जिन्हें अभी तक उनके उपयोग के लिए आलोचनात्मक रूप में उनके सामने नहीं रख दिया गया है),—ऐसे तत्वों को उनके उपयुक्त सच में जाने का प्रयास न करने के कारण अथवा ऐसा करने के योग्य न होने के कारण, जिसके लिए व्यवहारात्मक प्रमाण के सर्वत्र को हेगेलीय द्वंद्ववाद के लिए साक्ष्यिक रूप में सकारात्मक, आत्मोद्भूत सत्य के सर्वत्र के विषय रखकर, आशिक रूप में ऐसी सोचों पर अपनी श्रेष्ठता की भावना तक प्राप्त कर लेते हैं। कारण कि ईश्वरमीमासाकार आलोचक को यह विनम्र स्वाभाविक भयना है कि सभी कुछ दर्शन का ही किया जाना है, ताकि वह शुद्धता, निश्चितता,











के बचने और तथा अधिक दूरी जाती है, जिससे  
 जिस परिमाण का वास्तविकता बचने के लिए होना  
 जानने के विचार में हो जाने के लिए जानना है। जिस  
 अनुमान वास्तविकता मजबूती का कारण है, जो एक कारण  
 के, अपनी वास्तविकता परिमाण के, लिए जानना है।

दूसरी जितनी भी जिन की प्रति मनुष्यों की  
 मनुष्यों की उत्पत्ति की अनिवार्यता मानना है। इस  
 मान में बहुत अधिक हो जाने, तो धर्मों का एक ही  
 मिश्रण की वास्तविकता की मात्रा में हो जाता है। इस  
 धर्मों का परिमाण दोनों ही धर्मों के धर्मों का  
 ॥, जैसी हर धर्म जिन के परिमाण की होती है। वह  
 एक जिन बन गया है धर्म धर्म वह कोई तरीका का  
 है, तो उनके लिए वह विचार की हो जान है। धर्म की  
 की जितनी जिन मान पर निर्भर करती है, वह ही  
 धर्म पूजापत्तियों की मात्रा पर निर्भर करती है। अगर धर्म  
 मान से अधिक हो जाती है, तो धर्म के संप्रसारण धर्मों-संप्र  
 किराया धर्मों मजबूती-में से एक धर्मों धर्म के धर्मों  
 धर्म किया जाता है, धर्म [इन] उपादानों [का एक धर्म  
 इस उपयोग से निकल आता है धर्म इस प्रकार बाजार  
 केन्द्र-विद्यु के रूप में स्वाभाविक धर्म [की तरफ] धर्म जाता  
 है। लेकिन (१) जहां पर्याप्त धर्म विभाजन होता है, धर्म  
 धर्म के लिए धर्मों धर्म की नयी दिशाओं में निर्देशित  
 करना अत्यधिक कठिन होता है, (२) पूजापत्ति के संप्र  
 में धर्मों अधीनस्थ सबंध के कारण पहले उसे ही हानि उठाना  
 होती है।

इस प्रकार बाजार धर्म के स्वाभाविक धर्म की धर्म  
 धर्मों में वह धर्म ही है कि जितने सबसे अधिक धर्म

निवार्यतः हानि उठानी होती है। और यह बस पूंजीपति अपनी पूंजी की दूसरी दिशा में निर्देशन करने की क्षमता है कि जो भूमिक को, जो धन की किसी विशेष शक्ति बचा होना है, या तो साधनहीन बना देती है, या उसे न पूंजीपति की हर मांग के आगे झुकने को मजबूर करती है।

॥ 11, 1 ॥ बाजार दाम में आकस्मिक और सहस्र उतार-छाव दाम के उस भाग की तुलना में, जो साम तथा मजदूरी विपोजित होता है, किराये (लगान) पर कम आघात पड़े हैं, लेकिन साम पर ये मजदूरी की अपेक्षा कम आघात पड़े हैं। अधिकांश मामलों में अगर एक मजदूरी बढ़ती है, तो एक स्थिर रहती है और एक गिरती है।

भूमिक का तब लाभान्वित होना अनिवार्य नहीं है कि तब पूंजीपति को लाभ होता है, लेकिन जब पूंजीपति हानि उठाता है, तो भूमिक अनिवार्यतः हानि उठाता है। उदाहरणतः अगर पूंजीपति बाजार दाम को किसी उत्पादन भयवा व्यापार रहस्य की बदौलत, या एकाधिकार भयवा अपनी जमीन अनुपूल अवस्थिति की बदौलत स्वाभाविक दाम से ऊंचा रखता है, तो मजदूर को कोई लाभ नहीं होता।

इसके अलावा धन के दाम जिसों के दामों की अपेक्षा वही अधिक स्थिर होते हैं। बहुधा ये व्युत्क्रमानुपात में रहते हैं। महंगाई के साल में मजदूरी मांग में गिरावट के कारण गिर जाती है, लेकिन जिसों के दाम में बढ़ाव के कारण बढ़ जाती है—और इस प्रकार संतुलित हो जाती है। बहरहाल, बहुत से मजदूर रोटी में बर्धित हो जाते हैं। अनेक सालों में मांग में बढ़ाव के कारण मजदूरी बढ़ती है, अगर



पटकर क्षति नहीं उठानी पड़ती, जितनी अधिक धन को उठानी पड़ती है”।\*

॥ III, 1 ॥ (२) अब ऐसा समाज वे लेते हैं, जिसमें संपदा बढ़ रही है। यही अधिक के एकमात्र अनुकूल अवस्था है। इस पूँजीपतियों के बीच प्रतिद्विष्टता शुरू हो जाती है। अधिकों के लिए भाग उनकी पूर्ति से अधिक हो जाती है। लेकिन :

पहली बात तो यही है कि मजदूरी के बढ़ने से मजदूरों में कार्याधिस्य पैदा हो जाता है। वे जितना ही अधिक कमाना चाहते हैं, उन्हें अपने समय का उतना ही अधिक बलिदान करना होता है और तोष के माधनार्थ अपनी सारी स्वतंत्रता को पूरी तरह से गवाले हुए दाम धम करना होता है। इसके परिणामस्वरूप वे अपनी जिदगियों को घटाते हैं। जीवनावधि का यह लघुकरण समूचे तौर पर धमजीवी वर्ग के लिए एक अनुकूल घटना है, क्योंकि इसके परिणामस्वरूप धम की निरंतर नयी पूर्ति आवश्यक हो जाती है। इस वर्ग को इसके लिए हमें अपने एक भाग का बलिदान करना पड़ता है कि वह पूरी तरह से नष्ट न हो जाये।

इसके अलावा कोई समाज अपने को बढ़ती संपदा की हानत में कब पाता है? जब देश की पूँजियों और भायें बढ़ती होती हैं। लेकिन यह सिर्फ तब ही संभव है.

(क) बहुत धम के संचय के परिणामस्वरूप, क्योंकि पूँजी संचित धम ही है; फलतः हम लघु के परिणामस्वरूप कि अधिक के अधिकाधिक उत्पाद उनसे छीन लिये जाते हैं,

---

\* Adam Smith, *Wealth of Nations*, Vol. I, p. 230 (Garnier, L. II, p. 162) — सं०

कि स्वयं उगता श्रम अधिकारधिक मात्रा में उन्हें हस्त  
दूगरे स्थिति की संपत्ति की तरह में घाटा है और यह कि  
उगने जीवन तथा कार्यक्षमता के माध्यम अधिकारधिक पूँजी  
के हाथों में संचित होने जाते हैं।

(ख) पूँजी संचय श्रम विभाजन को बढ़ाता है और  
श्रम विभाजन मजदूरों की भ्रष्टाचार को बढ़ाता है। विनोद,  
श्रमिकों की सख्या में वृद्धि श्रम विभाजन को बढ़ाती है,  
जिस प्रकार श्रम विभाजन पूँजी संचय को बढ़ाता है। एक  
और इस श्रम विभाजन और दूसरी ओर पूँजी संचय के साथ-  
साथ श्रमिक अधिकारधिक अनन्यतः श्रम पर, और यह भी  
एक विशेष, अत्यंत एकाग्र, यत्नशाली श्रम पर निर्भर होता  
जाता है। जिस प्रकार इस तरह में यह आर्थिक तथा वैदिक  
स्थिति में घटती होकर यत्न की अवस्था में घाटा जाता है और  
समृद्ध होने से एक समुचित कार्यक्षमता और एक उदर बन  
जाता है, उसी प्रकार वह बाजार दाम में हर उतार-चढ़ाव  
पर, पूँजी के समुद्रयोग पर, और धनिकों की मौजों पर  
निरंतर अधिक निर्भर होता जाता है। ऐसे ही ॥ IV, 1 ॥ पूँजी  
काम पर अधिकार लोगों के वर्ग में वृद्धि श्रमिकों के बीच  
प्रतिद्वंद्विता को प्रखर करती है और इस प्रकार उनके दाम  
को नीचा करती है। कारखाना प्रणाली में यह स्थिति अपने  
चरम पर पहुँच जाती है।

(ग) अधिकारधिक समृद्ध होने समाज में केवल धनियों  
में सबसे धनी ही द्रव्य के व्यापार पर जी सकते हैं। बाकी  
हर किसी को अपनी पूँजी से कोई व्यवसाय करना होता है,  
या उसे व्यापार में अग्रिम में डालना होता है। फलस्वरूप  
पूँजीपतियों के बीच प्रतिद्वंद्विता अधिक प्रखर हो जाती है।  
बड़े पूँजीपति छोटे पूँजीपतियों

को नष्ट कर देते हैं और भूतपूर्व पूजीपतियों का एक हिस्सा गिरकर श्रमजीवी वर्ग में आ जाता है, जिसे इस पूर्ति के परिणामस्वरूप फिर किसी हद तक मजदूरी के जिम्मे को भेजना पड़ता है और वह छोटे से बड़े पूजीपतियों की ओर भी अधिक निर्भरता में आ जाता है। पूजीपतियों की सख्या के घट जाने के कारण मजदूरों के बारे में उनकी प्रतिद्विष्टता अब कदाचित्त ही बनी रहनी है, और श्रमिकों की सख्या के बढ़ जाने के कारण उनकी भाषम में प्रतिद्विष्टता और भी अधिक प्रखर, अस्वाभाविक और प्रचंड हो जाती है। फलतः श्रमजीवी वर्ग का एक हिस्सा उसी प्रकार अनिर्धार्य भिन्नमयी या भुखमरी में पड़ जाता है, जिस प्रकार मझोले पूजीपतियों का एक हिस्सा श्रमजीवी वर्ग में आ जाता है।

अतः समाज की मजदूर के लिए सज्जमे अनुकूल अवस्था में भी मजदूर के लिए अपरिहार्य परिणाम कार्याधिक्य और असामयिक मृत्यु, भात एक मशीन में, पूजी के, जो उनके ऊपर और उनके खिलाफ नतरनाक तौर पर दबड़ा होती जाती है, कीन दाम में अवनति, अधिक प्रतिद्विष्टता और श्रमिकों के एक हिस्से के लिए भुखमरी या भिन्नमयी ही होता है।

॥ V, 1 ॥ मजदूरी का चढ़ना श्रमिक में पूजीपति जैसा घनी बनने का उत्साह पैदा कर देता है, मगर इसे वह सिर्फ अपने विभाष और बदन की कुरखानी करके ही तुष्ट कर सकता है। मजदूरी के चढ़ने में पूजी सचय पूर्वकल्पित और आवश्यक है और इस प्रकार वह श्रम के उत्पाद को श्रमिक के विरुद्ध उनके मश-मदा प्रतिकूल नीति की तरह खड़ा कर देता है। इसी प्रकार श्रम विभाजन अपने साथ सिर्फ मनुष्यों ही नहीं, बल्कि मशीनों की भी प्रतिद्विष्टता को साकर श्रमिक

[illegible]

ये मजदूर के लिए समाज की सबसे धनरुम व्यवस्था बनी, जमान होगी सपना की व्यवस्था—के परि  
है।

तथापि, भारत कृषि की यह समस्या दर-प्रतिशत अपने  
पर पड़ना लगती है। भूमा सबकूर की स्थिति सब क्या

(३) "एक ऐसे देश में, जिसने धन-संपत्ति वह पूर्ण मात्रा प्राप्त कर ली थी [ .. ], धर्म मजदूरी और पूजा पर लाभ, दोनों ही सम्भव. नीचे हमें [ .. ], रोजगार के लिए प्रतिज्ञा अनिवार्यतः इनकी अधिक होगी कि धर्म की मजदूरी धटाकर इतना कर दे कि वह धर्मियों की को बनाये रखने के लिए मुश्किल से ही बाज़ी और चुकि देश पहले ही पूर्णतः धावाद है, इस यह मझ्या नभी नही बढ़ सकेगी।" \*

\* Adam Smith, *Wealth of Nations*, Vol. I, p. 81 (Garrod ed., 1936) — ४०

माधिय को कात कवलित हो जाना होगा।

इस प्रकार समाज की हान्यमान अवस्था में—  
मजदूर की बढ़ती हुई तगहानी, उत्कर्षमान अवस्था में—  
पेशीदमियों के साथ तगहानी, और समाज की पूर्णतः  
विकसित अवस्था में—स्थायी तगहानी।

॥ VI, १ ॥ लेकिन, चूंकि स्मिथ के अनुसार वह समाज सुखी  
नहीं होता, जिसका अधिकतम विपदाग्रस्त होना है\*—वैसे  
ही समाज की समृद्धतम अवस्था भी अधिकतम को इस  
विपदा की तरफ ही ले जाती है—और चूंकि धार्मिक व्यवस्था<sup>†</sup>  
(और सामान्यरूपेण निजी हित पर आधारित समाज) इस  
समृद्धतम अवस्था की ओर ले जाती है, इसलिए निष्कर्ष  
यह निकलता है कि धार्मिक व्यवस्था का मुख्य समाज का  
दुश्मन है।

मजदूर और पूँजीपति के बीच संबंध के बारे में हमें यह  
जोड़ देना चाहिये कि पूँजीपति की मजदूरी के बढ़ने का  
थम काल की मात्रा के घटने से पूँजे से भी अधिक प्रतिकारण  
मिल जाता है, और यह भी कि बढ़ती मजदूरी और पूँजी  
पर बढ़ते म्याज की क्रिया जिसो के दाम पर कमरा माधारण  
और चक्रवृद्धि म्याज की तरह होती है।

आइये, अपने को अब पूरी तरह से राजनीतिक अर्थशास्त्री  
के दृष्टिकोण पर ले आये और मजदूरों के सैद्धान्तिक तथा  
व्यावहारिक दावों की तुलना करने में उसका अनुगमन करें।

यह हमें बतलाता है कि मूलतः और मिद्वत्तत थम का  
सारा उत्पाद मजदूर का ही होता है। लेकिन साथ ही यह  
हमें बतलाता है कि वास्तव में मजदूर जो पाता है, वह

\* पूर्वोक्त, पृ० ७० (Garnier, t. 1, pp 159-160) — सं०





ना एकमात्र अपरिवर्तनीय दाम होता है, फिर भी धर्म के दाम से अधिक सांयोगिक, उतार-चढ़ाव के लिए घनावृत और कुछ नहीं होता।

यद्यपि धर्म विभाजन धर्म की उत्पादक शक्ति को उत्पन्न करता है और समाज की मजदूरी तथा परिष्कृति को बढ़ाता है, फिर भी वह मजदूर को निरुपाय बनाता है और उसे एक मशीन में बदल देता है। यद्यपि धर्म पूर्वी के मध्य और उनके साथ समाज की बढ़ती समृद्धि को संभव बनाता है, फिर भी वह मजदूर को पूँजीपति पर और भी अधिक आश्रित बनाता है, उसे समुत्पन्न प्रचरणा की प्रतिद्वंद्विता में ले जाता है और उसके बाद ऐसी ही मदी खाकर उसे अत्युत्पादन की अघाघृष्ट दौड़ में धकेलता है।

यद्यपि राजनीतिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार मजदूर का हित कभी समाज के हित के मुकाबले पर नहीं आता, समाज सदा और अनिवार्यतः मजदूर के हित के मुकाबले पर खड़ा होता है।

राजनीतिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार मजदूर का हित कभी समाज के हित के विरुद्ध नहीं होता (१) क्योंकि बढ़ती मजदूरी का ऊपर वर्णित अन्य परिणामों के साथ धर्म बाल की मात्रा में संपूर्णतः द्वारा पूर्णाधिक प्रतिकरण हो जाता है; और (२) क्योंकि समाज की आपेक्षता में सारा सकल उत्पाद निरन्तर उत्पाद होता है, और निरन्तर उत्पाद का केवल निम्नी व्यक्ति की आपेक्षता में ही कोई महत्व होता है।

लेकिन यह बात कि धर्म स्वयं, केवल वर्तमान अवस्थाओं के अंतर्गत ही नहीं, बल्कि जहाँ तक कि सामान्य रूप में उसका ध्येय संपन्न की वृद्धि मात्र होता है—में कहता है कि यह बात कि धर्म स्वयं हानिकार और विनाशक होता









[illegible]































गोल १: अपनी बात तो यह है कि पूँजी का तत्त्व  
 पूर्णतः नियोजित पूँजी के मूल्य शून्य निर्देशित  
 होता है, यद्यपि भिन्न-भिन्न पूँजियों से संबद्ध निर्देशित  
 गया निवेशन का धर्म उतना ही हो सकता है। एक  
 पलायन बड़े नामों में यह सारा धर्म किसी एक  
 अधीक्षण के गुप्त कर दिया जाता है, विनये वेतन  
 का 11. 2। उक्त पूँजी के साथ कोई नियमित अनुपात  
 नहीं होता है, जिससे प्रत्यक्ष या वह अधीक्षण कर  
 है। और यद्यपि स्वामी का धर्म यहाँ लगभग नहीं  
 के बराबर रह जाता है, फिर भी वह अपनी पूँजी  
 के अनुपात में ही नामों की मांग करता है। (ऐडम  
 स्मिथ, प्रवर्कन, खंड १, पृ० ४३ [Garnier, t. 1,  
 pp. 97-98].)<sup>13</sup>

पूँजीपति लाभ और पूँजी के बीच इस अनुपात की मांग  
 क्यों करता है?

उसका मकसूरों को नियोजित करने में तब तक  
 कोई स्वार्थ न होगा, जब तक कि वह उनके काम  
 की बिन्ती से अपने द्वारा मकसूरों के रूप में अग्रसारित  
 (advanced) स्टॉक की प्रतिस्थापना के लिए आवश्यक  
 से अधिक कुछ पाने की अपेक्षा न करता हो और  
 उसका छोटे स्टॉक के बजाय बड़े स्टॉक का नियोजन  
 करने में तब तक कोई स्वार्थ न होगा, जब तक कि  
 उसके लाभों का उसके स्टॉक के परिमाण के साथ  
 कोई अनुपात न हो। (ऐडम स्मिथ, प्रवर्कन, खंड  
 १, पृ० ४२ [Garnier, t. 1, pp. 96-97].)

इस प्रकार पूँजीपति एक तो मकसूरी पर, और दूसरे  
 अपने द्वारा अग्रसारित कच्ची सामग्री पर लाभ बनाता है।  
 अतः लाभ का पूँजी के साथ क्या अनुपात होता है?



मातंग्य प्रतिष्ठिता के उन सारे गुणों के कारण  
 जिनका पूजापति इस प्रसंग में उपयोग कर सकता है, ॥  
 बाजार दाम को विपरीत उचित तरीकों से भी स्वाभाविक  
 दाम के ऊपर रख सकता है।

एक तो यही कि अगर बाजार उन लोगों से  
 जो उसकी पूर्ति करते हैं, बहुत दूरी पर है, तो  
 व्यापार में रहस्य रखकर, मर्यादा दाम में परिवर्तन  
 को, स्वाभाविक स्तर से उनके पड़ने को, छिपाकर।  
 इस संशोधन का यह प्रभाव होता है कि दूसरे पूजापति





इस प्रकार मानव धर्म द्वारा प्रकृति के उत्पादों को प्रकृति के निर्निर्मित उत्पादों से परिचरित करने से ही मनुष्य प्रकृति धर्म की मददगारी को करी, कृत्रिम धार्मिक रूप से मानव प्रकृति निर्देशनों की मददगारी को, और धार्मिक रूप से पूर्वगामी प्रकृति की तुलना से प्रत्येक उत्तमगामी प्रकृति के धारण को बढ़ावा दे।

धर्म विभाजन से प्रकृतिपति जो गठनित होने हासिल करता है, उनके बारे में अधिक और धार्मिक रूप से समझा जायेगा।

यह दुहरे सौर पर फायदा उठाता है—एक तो धर्म विभाजन द्वारा; और दूसरे, सामान्य रूप से, मानव धर्म नैसर्गिक उत्पाद का जो मुखार करता है, उसके द्वारा। किसी



पृथिवी के निवासीयों की संस्कारों और परिष्कार, धर्म की सभी सबसे बड़ों गुणों विद्वानों का सिद्ध तथा निरंतर बननी है, और इन सभी संस्कारों का परियोजनाओं द्वारा प्रस्तुत करने साम ही है। लेकिन लाभ हर विचारों और व्यवहारों की तरह । सत्य की समृद्धि के साथ नहीं बननी और धर्म के रूप गिरती नहीं है। इसके विपरीत वह स्थायिक रूप में सभी देशों में नीची और निम्न देशों में ऊंची है, है, और उन देशों में सदा उच्चतम होती है, के विनाश की और तीव्रतम यदि में आ रहे होते हैं। इन समाज के इस वर्ग के हित का समाज के सामान्य हित के साथ बड़ी संबंध नहीं होना, जो धर्म दोनों के हित का होता है। व्यापार व्यवसाय उद्योगों की किसी विशेष भाषा में बारबार करनेवालों का विशेष हित हमेशा आम लोगों के हितों से कुछ बाधों में भिन्न, और बहुधा प्रचंड विरोध तक में होता है। बाजार को विस्तृत करना और विवेकाधी की प्रति-द्विधा को सीमित करना हमेशा व्यापारी का हित होता है। यह ऐसे लोगों का वर्ग है, जिनका



२२  
 पृथ्वी के विद्यार्थी की होशियार और लीज  
 धर्म की सभी सबसे बलवान् विद्वानों का  
 तथा निदान करने की है, और उन सभी होशियार  
 विद्यार्थियों का द्वारा प्रमुख मान मान हो है।  
 मान हर विद्वाने और बलवान् की तरफ से  
 की समृद्धि के साथ नहीं बल्कि और बलवान् के  
 विद्वानों नहीं है। हमने विद्वानों पर साक्षात्कार  
 में अपनी देशों में नीची और निर्धन देशों में उंची  
 है, और उन देशों में सदा उच्छ्रय होती है।  
 विद्वानों की और तीव्रता यदि से जा रहे होते  
 धर्म सम्राज के बल बल के लिए का सम्राज के ।





मान पड़ता जाता है। मण्य, जो सबसे पहले नुकसान उठाता है, वह छोटा पूँजीपति है।

इसके अलावा पूँजियों की वृद्धि और पूँजी निवेशों की बड़ी संख्या देश में बढ़ती हुई समृद्धि की अवस्था की अपेक्षा करती है।

"ऐसे देश में, जिनमें धन-संपत्ति का अपना पूर्ण सामर्थ्य प्राप्त कर लिया है, [ ] शुद्ध लाभ की सामान्य दर बहुत कम होगी, इसलिए उसमें जो सामान्य [वापार] व्यापार दर हो जा सकती है, वह इतनी भीची होगी कि बहुत ही सम्मान तो के अलावा और किसी के लिए भी अपने धन : राज पर जीना पर्याप्त कर देगी। मध्यम समृद्धि [ ] सभी लोगों को स्वयं अपने स्वार्थों के नि : की व्यवस्था करने को मजबूर होना पड़ेगा। व : आवश्यक होगा कि लगभग हर ही आदमी व्यवसाय : नेवारा आदमी हो, या किसी प्रकार के व्यापार में : हो।" (ऐडम स्मिथ, यूरोप, खंड १, पृ० २१ : atter, t l, pp. 198-197)।\*

राजनीतिक अर्थशास्त्र के अन्दर को सबसे प्रिय विषय यही है।

"धन पूँजी तथा धान के बीच अनुपात ही सब कही उद्यमशीलता तथा निष्क्रियता के बीच अनुपात

\* इस पैराग्राफ के बाद मार्क्स ने इस वाक्य को काट दिया था : "पूँजियों व्यापार पर जितना ही कम उधार हो जाती है और वे जितना ही अधिक उर्मीयों से पैसा : अर्थात् में दाती जाती है, पूँजीपतियों के बीच प्रतिद्वन्द्विता : वतना ही अधिक प्रबल होती जाती है।"



का नियमन करना प्रतीत होता है; जहाँ वही पूजा का प्रभुत्व होता है, वहाँ उद्यमशीलता अभिवर्धनी होती है, जहाँ वही धर्म का प्राधान्य होता है वहाँ निष्क्रियता अभिवर्धनी होती है।" (ऐडम स्मिथ पूर्वोक्त, खंड १, पृ० ३०१) [Garnier, L. II. ॥ 325]

इसलिए वही हुई प्रतिद्विष्टता की इस समस्या से पूजा उपयोग के बारे में क्या जाना जा सकती है?

"जैसे-जैसे स्टॉक बढ़ता है, व्याज पर उधार जानेवाले स्टॉक का परिमाण धीरे-धीरे घटित होता जाता है। जैसे-जैसे व्याज पर उधार दिये जानेवाले स्टॉक का परिमाण बढ़ता है, व्याज . . . घटता जाता है।" (१) क्योंकि चीजों का बाजार दाम और तौर पर उनके परिमाण के बढ़ने के साथ-साथ निर्धारित होता है। और (२) क्योंकि किसी भी देश की पूजियों की वृद्धि के साथ "देश के भीतर किसी भी पूजा के उपयोग का कोई सामंजस्य तरीका नहीं होता। धीरे-धीरे अधिकारिक कठिन होता जाता है।" सामंजस्य विभिन्न पूजियों के बीच प्रतिद्विष्टता हो जाती है, जिसमें एक पूजा का स्वामी उस व्यवस्था का स्वामित्व पाने का प्रयास करता है, जो उसके अधिकार में होता है। लेकिन अधिकांश व्यवस्था पर वह इस दूसरे व्यक्ति को इस व्यवस्था से निष्काशित लोगों की अधिक उचित भर्तों देने के और निष्काशित करने से घरेलू बाहर करने की भांति नहीं कर पाता है। उसे न सिर्फ जिसमें वह कारखाना करता है, कुछ सस्ता ही बेचना पड़ेगा, बल्कि उसे बेचने के लिए कभी-कभी ज्यादा महंगा भी खरीदना होगा। उत्पादक धर्म की भाँति, उनके अनुरक्षण के लिए निश्चित निधियों की वृद्धि होगी, प्रति दिन अधिकारिक



राखे \* से व्यवसायियों में परिणत कर देता है, तो इस विपरीत व्यावसायिक पूँजी में वृद्धि और तद्वर्धित न्यूनता लाभ व्याज दर में उतार लाते हैं।

“जिसी पूँजी के उपयोग से जो लाभ बनाये जा सकते हैं, जब वे [ . ] घटने हैं [...], तो उसके उपयोग के लिए जो दाम दिया जा सकता है [...] उसे उनके साथ अनिवार्यतः घट जाना चाहिए।” (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० ३१९ [Garnier, t II, p 359])

“जैसे-जैसे धन, उद्योगों और भाषाओं में वृद्धि हुई है, व्याज घट गया है”, और परिणामस्वरूप पूँजीपतियों के साथ भी घट गये हैं, “इन [लाभों] के घट जाने के बाद स्टॉक सिर्फ़ बढ़ता ही नहीं रह सकता है, बल्कि पहले की बनिस्बत कहीं तेजी के साथ बढ़ता रह सकता है। [ ] बड़ा स्टॉक, बड़े छोटे लाभों के साथ, ब्याज तौर पर बड़े लाभों के साथ छोटे स्टॉक की अपेक्षा तेजी से बढ़ता है। कहावत है कि धन धन बनाता है।” (पूर्वोक्त, खंड १, पृ० ८३ [Garnier, t I, p 189])

अतः जब इस बड़ी पूँजी का छोटे लाभों के साथ छोटी पूँजियों द्वारा विरोध किया जाता है, जैसे कि प्रखर प्रतिद्विष्टता की पूर्वकल्पित अवस्था के अंतर्गत है, तो वह उन्हें पूर्णतः ध्वस्त कर देती है।

इस प्रतिद्विष्टता का अनिवार्य परिणाम जिसों का सामान्यरूपण गुणह्रास, मिलावट, जाली उत्पादन और सार्विक दूषण है, जो बड़े शहरों में प्रत्यक्ष है।



इस प्रकार का ही लक्षण है कि स्वामी पूत्री तब तक  
 पूत्री का संबंध छोड़े पूत्रीपति की स्तोत्रा को पूत्रीपति के  
 कर्तव्य अधिक अनुकूल माना है। बहुत छोटे बेटों की तुलना  
 में बहुत बड़े बेटों को जिस व्यक्तिगत स्वामी पूत्री के  
 धारणकर्ता होती है वह मरणा होती है। उनमें स्वामी  
 पूत्री स्तर में अधिक छोटी कुछ नहीं होती। बड़े भूतल  
 का मातृगामान उनकी आयुवाद के आधार के अनुसार है  
 नहीं होता। इसी प्रकार छोटे पूत्रीपति की तुलना में वह  
 पूत्रीपति जिस मान का उपयोग करता है, उसका मतलब  
 उनके लिए स्वामी पूत्री से—अर्थात् उनके पास हमें किना  
 नरक इस प्रकार चाहिये, उनकी माया से—छोटी की अधिक  
 बचन है। अतः यह स्पष्ट है कि जहां औद्योगिक धर्म बहुत  
 ऊँचे स्तर पर पहुँच गया है, और इसलिए जहां समस्त  
 सारा शारीरिक धर्म वास्तविक धर्म बन गया है, छोटे  
 पूत्रीपति की छोटी पूत्री उसे आवश्यक स्वामी पूत्री तक पहुँचा  
 करने के लिए बाध नहीं होती। On sait que les tra-  
 vaux de la grande culture n'occupent habituelle-  
 ment qu'un petit nombre de bras \*

\* जैसे कि सुविदित है, बड़े पैमाने की कृषि धर्म तौर  
 पर छोटे से लोगों के लिए ही काम भुँटवा करती है।—स०



६५१५ नं० ११/१२ की हनी हुई  
 है, और धारा ६ (ग) के अनुसार निर्दिष्ट हनी  
 की जाती हो जाती है। किन्तु वि० १८१६ के जो १६  
 निर्दिष्ट दिवस होते हैं, धारा १ निर्दिष्ट और १० रोज  
 में ही जाती है। औद्योगिक उद्योगों का बसाया सम्पत्ति  
 इस में लाने और विदेश में बनी, लोगों का बसाया  
 जाता है, और इसके कारण में केवल यही दि० रोज  
 निर्दिष्ट में लाने उद्योग में बनीयों के प्रचलन के जो  
 मजदूरों की मजदूरी करी नहीं है, बल्कि बानीय हमार  
 मजदूर पदेन साथ ही जाती है। [XII, 2] यहाँ तक औद्योगिक  
 उपक्रमों और मजदूरों की धारा की बात है, बाल्यार्थ  
 मातृत्व के बीच बड़ी प्रतिष्ठित का परिणाम उन  
 द्वारा प्रदात उद्योगों के परिणाम की साधना में उनके  
 लाभों का अनिवार्यता निरन्तर रहा है। १८२०-१८३१  
 के वर्षों में मैनेजर के कार्यान्वयन का सूची करने  
 के एक पान पर गवस लाभ ॥ निर्दिष्ट १ १/३ रोज  
 से निरन्तर १ निर्दिष्ट ६ रोज हो गया। लेकिन इस  
 नुकसान की पूरा करने के लिए उत्पादन का परिणाम  
 इसके अनुरूप ही बढ़ा दिया गया है। इसका नतीजा  
 यह है कि उद्योग की बतल-बतल भाषाएँ किसी हद  
 तक \* अत्युत्पादन का अनुभव करती हैं, और यह कि

\* श्रुति ने "समय-समय पर" (zeitweise) का  
 प्रयोग किया है, न कि "किसी हद तक" (tellweise)  
 का। - स०





“ २०,००० पाउंड की पूरी लगनेवाली छानवी दे  
 निग, शिगका मुनागा २,००० पाउंड प्रति वर्ष ही,  
 यह बिनापुन ही महत्त्वहीन बान होगी कि उसी पूरी  
 ती सोचो वो नियोजित करगी है या हगार की!..  
 क्या राष्ट्र का सामाजिक हिन ऐसा ही नहीं होगा?  
 अगर उसी निवान सामाजिक भाव, उसी निराल  
 और लाभ उनसे ही हो, तो इसका कोई महत्व नहीं,  
 कि राष्ट्र में १०० लाख निवासी हैं या १२० लाख।”

[I. II, pp 194, 195] “वस्तुतः,” थी सीममोरी  
 करते हैं (*Nouveaux principes d'économie  
 politique*,) I II, p 331), “इसके अलावा और  
 कुछ बाधा करने की नहीं रहता कि सम्राट, राष्ट्र पर  
 बिलकुल अकेले रहने हुए, लगातार एक बैंक (भराल)  
 चलाकर इंग्लैंड का सारा काम कसो से करताता  
 रहे।” ■ ■ ■

“मालिक, जो मजदूर के श्रम को इतने नीचे दाम  
 पर खरीदता है कि वह मजदूर की सबसे जरूरी  
 आवश्यकताओं के लिए भी मुश्किल से काफी होता  
 है, न मजदूरी को अपर्याप्तता के लिए उत्तरदायी है  
 और न श्रम की अत्यधिक दीर्घता के लिए उसे  
 स्वयं उस नियम के आगे झुकना होता है, जिसे वह  
 लागू करता है। .. निर्धनता इतना लोगों द्वारा नहीं











उनी अनुगत में अधिकाधिक विभाजित हो जाता है, जिनमें स्टॉक का पड़ने अधिकाधिक महत्त्व होता है। उनमें ही भाषा द्वारा सामग्रियों की खिन्नी मात्रा को उत्पादन में लाया जा सकता है, वह धर्म के अधिकाधिक विभाजित होने जाने के साथ बहुत अनुगत में बढ़ती जाती है, और प्रत्येक कामगार को जगहों के नये-नये अधिगमरण जगहों में परिणत होने जाने के साथ इन क्रियाओं को सुगम तथा गतिमान करने के लिए विशेष प्रकार की नवी मशीनें आदिष्ट हो जाती जाती हैं। यह धर्म विभाजन के घाते बढ़ने के साथ उनमें ही कामगारों को नए काम प्रदान करने के लिए रण्य के उनमें ही स्टॉक (भंडार), और कम विकसित संस्थाओं में जिनका प्रावण्य होता, सामग्रियों तथा उपकरणों के उगमे अधिगम बड़े भंडार को पढ़ने सविन करना होगा। व्यवसाय की प्रत्येक भाषा में कामगारों की मजदूरी उत भाषा में धर्म विभाजन के साथ घाम और पर बढ़ती है, अथवा यों कहिये कि उनकी मजदूरी में वृद्धि ही उन्हें अपने भारों इस तरह से बर्णित तथा उपविभाजित करने में सपर्य बनानी है।" (ऐडम स्मिथ, पूर्वोल, खंड १, पृ० २४१-२४२ (Garnier, t II, pp 193-194))

"चूंकि धर्म की उत्पादन शक्तियों में इस भारी सुधार को जारी रखने के लिए स्टॉक का महत्त्व पढ़ने आवश्यक है, इसलिए यह सचय स्वाभाविकतया इस सुधार की तरफ से जाता है। जो आदमी अपने स्टॉक से धर्म को नियोजित करता है, वह अनिवार्यतः उम्मा इस तरह से नियोजन करना चाहता है कि जिनसे काम की यथासम्भव बड़ी मात्रा पैदा की जा सके। अतः वह अपने कामगारों के बीच काम का सबसे उपयुक्त वितरण करने और उन्हें सबसे अच्छी मशीनें

मुहैया करने, दोनों का प्रयास करता है [... ]। इन दोनों ही बातों में उमरी समताएँ ॥ XV, 2 ॥ सामान्यतया उसके स्टॉक के परिमाण के, अथवा जिन लोगों को वह नियोजित कर सकता है, उनकी संख्या के अनुपात में होती हैं। इसलिए स्टॉक की वृद्धि के साथ न केवल प्रत्येक देश में उद्योग का परिमाण ही बढ़ता है, जो उसे नियोजित करता है, बल्कि, इस वृद्धि के परिणामस्वरूप, उद्योग का उतना ही परिमाण कार्य का वही बड़ा परिमाण उत्पन्न करता है।" (ऐडम स्मिथ, प्रारंभ, खंड १, पृ० २४२; [Garnier, t II, pp. 194-195])

## परिणामतः प्रत्युत्पादन।

" . उद्योग और व्यापार में अधिक नानासम्य और अधिक नानाविध मानविक तथा नैसर्गिक शक्तियों के अधिक बड़े पैमाने के उद्यमों में सम्मिलन द्वारा उत्पादक शक्तियों के अधिक व्यापक संयोजन। अब भी जहा-तहा, उत्पादन की मुख्य शाखाओं में अनिच्छित साहचर्य। इस प्रकार बड़े उद्यमपति अपने उद्योग के लिए आवश्यक कच्चे मालों के कम से कम कुछ हिस्से के लिए दूसरों से स्वतंत्र होने के लिए बड़ी भू-संप्रतिष्ठा भी प्राप्त करने का यत्न करेंगे, अथवा अपने औद्योगिक उद्यमों के साथ मिलकर वे केवल स्वयं अपने निर्मित मालों को बेचने के लिए ही नहीं, बल्कि अन्य प्रकारों के उत्पादों को खरीदने और उन्हें अपने मजदूरों को बेचने के लिए भी व्यापार में जाएंगे। इंग्लैंड में, जहां भकेला कारखाना मासिक कभी-कभी दस से बारह हजार मजदूरों को काम पर रखता है... एक ही मस्तिष्क द्वारा नियंत्रित उत्पादन की विभिन्न शाखाओं के ऐसे संयोजनों को, राज्य के





तब पूँजी का संचय बढ़ता है और पूँजीपतियों के बीच प्रतिद्वन्द्विता कम होती है, जब पूँजी और भू-संपत्ति एक ही हाथ में मिल जाती हैं, और तब भी कि जब अपने धारक की बदौलत पूँजी उत्पादन की भिन्न-भिन्न मात्थाओं को संयुक्त करने में समर्थ हो जाती है।

सोनों के प्रति उदासीनता। स्मिथ के बीच साटरी टिपट ।<sup>12</sup>

सैय की निबल तथा सचस धाय । | XVI |

## जमीन का किराया (लगान)

§ 1, 3। भूस्वामियों के अधिकार का मूल उद्देश्य है। (सैय, खंड १, पृ० १३६, टिप्पणी।) धर्म सभी लोगों की तरह ही भूस्वामी भी बड़ा काटना चाहते हैं, जहाँ उन्होंने कभी सोचा नहीं है, और धरती की नैसर्गिक उपज तब के लिए किराया मांगते हैं। (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० ४४ [Garnier, t. I, p. 99])

“यह सोचा जा सकता है कि जमीन का किराया अक्सर भूस्वामी द्वारा उसके मुधार पर लगाये गये स्टॉक के लिए उचित लाभ या मूल के बलावा और कुछ नहीं होता। बेशक, कुछ अवसरों पर आंशिक रूप में यही बात हो सकती है। . भूस्वामी”

(१) “अनुत्पन्न जमीन तक के लिए किराया मांगता है, और मुधारने के व्यवहार पर तथाकथित व्याज अथवा लाभ भ्राम तौर पर इस मूल किराये में संवृद्धि होता है।” (२) “इसके बलावा ये मुधार हमेशा ही भूस्वामी के स्टॉक द्वारा नहीं, बल्कि कभी-कभी पट्टेदार के स्टॉक द्वारा भी किये जाते हैं। लेकिन जब पट्टे को नवीकृत करने का समय आता है, तो भूस्वामी भ्राम और पर किराये की ऊँची ही संवृद्धि की मांग



बहुत हिस्सा है। § II, 3। लेकिन पानी की उपज से लाभ उठा सकने के लिए यह आवश्यक है कि पास की जमीन पर उनके पास रहने की जगह हो। भूस्वामी का किराया किमान जो जमीन से बना सकता है, उसके अनुपात में नहीं, बल्कि वह जमीन से और पानी से, दोनों से जितना बना सकता है, उसके अनुपात में होता है।" (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० १३१ [Garnier, t. I, pp 301-302])

"इस विषये जो उन प्राकृतिक शक्तियों की उपज माना जा सकता है, जिनका उपयोग भूस्वामी किमान को भाडे पर देता है। वह इन शक्तियों की मानी हुई सीमा के अनुसार, यद्यपि हमारे शब्दों में, जमीन की मानी हुई नैसर्गिक यद्यपि समुन्नत उर्वरता के अनुसार कम या अधिक होता है। उस सब कुछ को घटाने और क्षतिपूर्ति करने के बाद, जिसे मनुष्य का किया हुआ माना जा सकता है, जो बाकी रहना है, वह प्रकृति का किया हुआ है।" (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० ३२४-३२५ [Garnier, t. II, pp 377-378])

"सब जमीन के उपयोग के लिए दिये जानेवाले लाभ की तरह मानने पर जमीन का किराया कुदरती तौर पर एकाधिकार लाभ होता है। उसका भूस्वामी ने जमीन के सुधार पर जो लगाया हो, उसके साथ, यद्यपि जो वह ले सकता है, उसके साथ कोई अनुपात नहीं होता, बल्कि जो कांस्तकार दे सकता है, उसी के साथ होता है।" (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, पृ० १३१ [Garnier, t. I, p 302])

तीनों मूल वर्गों में भूस्वामियों का वर्ग ही ऐसा है, "जिनकी आय के लिए उन्हें न श्रम लगाना पड़ता है और न ध्यान, बल्कि जो उनके पास यो कहिये कि स्वयं अपनी भरपूर से और स्वयं उनकी किसी भी

शोका का इगरे० में निर्देशन का उपा० है  
 ( ऐसम स्मिथ, यूरोप. गड १, पृ० ३१० [Gardner  
 t. II, p. 161]. )

इस प्रकार ही ज्ञान बूझ है कि निर्देशन का परिणाम है  
 की उर्वरता की मात्रा पर निर्भर करता है।

उपरोक्त निर्देशन में एक और बात है निर्देशन।

"जमीन का निर्देशन में केवल अपनी उर्वरता  
 मात्र, उपरोक्त उर्वरता काहे जो हो, जमीन अपनी निर्देशन  
 के मात्र, उपरोक्त उर्वरता काहे जो हो, यथा-यथा  
 है।" ( ऐसम स्मिथ, यूरोप, गड १, पृ० ११  
 [Gardner, t. I, p. 306] )

"जमीन, यथा-यथा, और यथा-यथा की उर्वरता, जो  
 अपनी निर्देशन उर्वरता बराबर होती है, उनके निर्देशन  
 निर्देशन पूजा के परिमाण तथा उर्वरता t. III, 3। उनको  
 के अनुमान में होती है। जब पूजा बराबर और समान  
 रूप में हीन में लगायी होती है, तो वह उनकी  
 निर्देशन उर्वरता के अनुमान में होती है।" ( यूरोप,  
 गड १, पृ० २४६ [Gardner, t. II, p. 210] )

स्मिथ की ये प्रस्थापनाएं महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि समान  
 उत्पादन लागते और समान मात्रा की पूजा के होने पर,  
 वे जमीन के किराये को मिट्टी की ज्यादा या कम उर्वरता  
 के अनुकूल कर देती हैं। इसके द्वारा के राजनीतिक धर्मशास्त्र  
 में अवधारणाओं के विपर्याय को स्पष्ट दिखलाती हैं, जो  
 भूमि की उर्वरता को भूस्वायत्त के एक गुण में बदल देता है।

लेकिन अब हमे जमीन के किराये पर उस तरह विचार करना चाहिये, जिस तरह यह वास्तविक जीवन में उत्पन्न होता है।

जमीन का किराया पट्टेदार (कास्तकार) और भूस्वामी के बीच सघर्ष के परिणामस्वरूप स्थापित होता है। हम पाते हैं कि हिंदों का शत्रुतापूर्ण विरोध, सघर्ष, युद्ध समूचे राजनीतिक संघर्षशास्त्र में सामाजिक संगठन के माध्यम की तरह में स्वीकार किया जाता है।

सादये, अब यह देखें कि भूस्वामी और पट्टेदार के बीच सघर्ष क्या है।

“पट्टे की जमीनें व्यवस्थित करते समय भूस्वामी पट्टेदार के पास उपज का उससे अधिक हिस्सा न रहने देने का प्रयास करता है, जितना प्रयोग-यंत्रों में कृषि स्टॉक (पूजी) के साधारण साधों के साथ उन स्टॉक को बनाये रखने के लिए काफी रहना है, जिससे वह बीज मुहैया करता है, धर्म की सहायता करता है और और तथा कृषि के अन्य उपकरण खरीदना और रखता है। प्रकटत यह वह न्यूनतम भाग होता है, जिस पर पट्टेदार हानि उठाये बिना सतोष कर सकता है, और उसके पास उससे कुछ अधिक छोड़ने की भूस्वामी की वंशवित्ति ही मंशा होती है। उपज का जो भी भाग, भ्रमना, जो एक ही भाग है, उसके दाम का जो भी भाग इन हिस्से के अन्तर्गत होता है, उसे भूस्वामी नृदली तौर पर अपनी जमीन के किराये की तरह अपने लिए आरक्षित करने का प्रयास करता है, जो प्रत्यक्षत जमीन की वास्तविक अवस्थाओं को देखते हुए पट्टेदार जितना उच्चतम दे सकता है, वह होता है। IV, 3 [...] लेकिन इस घण को फिर भी जमीन का नैसर्गिक किराया, भ्रमना यह

विभाजित बाजार का अर्थ है, जिसमें एक-दूसरे को  
 १५ यह मान्य है कि जमीन के उपयोग का यह  
 विभाजित बाजार बना जा सके।" (लेन गिब्स,  
 गुबन, भाग १ पृ. ११०-१११ [Gibbs, I, p.  
 110-111])

यह बताने है, 'पट्टेदार के लिए प्रत्येक एक  
 प्रकार का व्यवहार का उचित करने है। उनी  
 विग, बल और जमीन के लिए बाजार निर्माण  
 बढ़ती ग मानी है, जिन उनी विग की एक  
 नियम, सीमित माना ही होती है। धूम्रपान और  
 पट्टेदार के बीच मान्य मोटा हमारा व्यवहार मगर  
 सीमा तक प्रकीर्ण के अनुकूल होता है। बाजार  
 की प्रगति से उने जो लाभ प्राप्त होता है, उने  
 धनदाता यह धानी पैसियन में, धनी धन  
 और उपाय मान्य तथा प्रगति से और भी लाभ  
 प्राप्त करता है। लेकिन पटना ही लाभ धाने धन  
 उने और केवल उगाही ही जमीन की अनुकूल परिस्थितियों  
 से लाभ उठाने में समर्थ बना देता है। निमी महर  
 या महर का गुणना, निमी बिले की धनदाता और  
 ममूडि का बढ़ना हमारा विराये को बड़ा देता है।...  
 वस्तुतः ही सक्ता है कि पट्टेदार जमीन को स्वयं  
 अपने धन से मुछारे; लेकिन वह इस पूजी से निर्क  
 अपने पट्टे की अवधि में ही लाभ उठा सक्ता है,  
 जिसकी समाप्ति के साथ वह जमीन के मानिक के  
 पास रहता है; धाने से धनोपन ही परिस्थितिये  
 बिना उससे गूद बढोला है, क्योंकि जब किराये में  
 मयानुगत वृद्धि हो जाती है।" (Say, I, pp  
 142-143)

"जमीन के उपयोग के लिए दिये जानेवाले दाम  
 की तरह मानने पर किराया कदरती तीर पर जमीन  
 की वास्तविक अवस्थाओं में पट्टेदार जितना उच्चतम

दे सकता है, वह होता है।" (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० १३० [Garnier, t I, p 299])

"जमीन के ऊपर की संपत्ति का किराया भ्राम-  
 लौर पर उतना होता है, जिसे सकल उपज को एक  
 निहाई समझा जाना है, और वह सामान्यतया ऐसा  
 किराया होता है, जो निश्चित होता है और फसल  
 में सांयोगिक हेर-फेर में स्वतंत्र ॥ V, 3 ॥ होता है।"  
 (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० १५३ [Garnier,  
 t I, p 351]) यह किराया "कदाचित् ही... कुल  
 उपज के एक चौथाई में कम होता है"। (पूर्वोक्त,  
 खंड १, पृ० ३२५ [Garnier, t II, p. 378])

किराया सभी जिनो पर नहीं दिया जा सकता है। उदाहरण  
 के लिए कितने ही जिनो\* में पत्थरों के लिए कोई किराया  
 नहीं दिया जाता है।

"जमीन की पैदावार के सिर्फ ऐसे हिस्से ही भ्राम  
 लौर पर बाजार भाड़े जा सकते हैं, जिनका साधारण  
 दाम उम स्टॉक (पूजी) की अपने साधारण लाभों  
 के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए काफी रहना है,  
 जिसे उन्हें वहां माने में नियोजित करना पड़ना है।  
 अगर साधारण दाम हमसे अधिक है, तो बेसी भ्राम  
 स्वाभाविकतया जमीन के किराये में बढ़ा जावेगा।  
 अगर वह ज्यादा नहीं है, तो चाहे जिन को बाजार  
 भाया जा सकता है, अगर वह भूस्वामी को कोई  
 किराया नहीं प्रदान कर सकेगा। दाम ज्यादा है या  
 नहीं है, यह बात माथ पर निर्भर करती है।" (ऐडम  
 , पूर्वोक्त, खंड १, पृ० १३२ [Garnier, t I,





भरण-पोषण करने के लिए पर्याप्त होती है [। .] बैंगी भी हमें ज्ञा हो उस धर्म को नियोजित करनेवाले स्टॉक का, उसके लाभों सहित, प्रतिस्थापन करने के लिए यथेष्ट में अधिक होती है। इसलिए भूस्वामी को किराये के लिए हमें ज्ञा ही कुछ बचा रहता है।" (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० १३२-१३ [Garnier, t. I, pp 305-306] )

"इस तरह से भोजन न केवल किराये का मूल स्रोत हो है, बल्कि जमीन की पैदावार का हर एक भाग, जो बाद में किराया देता है, अपने मूल्य में इस भाग को जमीन के सुधार और वर्धन के जरिं भोजन उत्पन्न करने से धर्म की शक्तियों में सुधार में ही प्राप्त करता है।" (ऐडम स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १ पृ० १५० [Garnier, t. I, p 345] )

"मानव आहार ही भूमि की वह एकमात्र उप प्रतीत होता है, जो भूस्वामी को सदा और अनिवार्य कुछ किराया दे सकता है।" (पूर्वोक्त, खंड १ पृ० १४७ [Garnier, t. I, p 337] )

"देश उन लोगों की सख्या के अनुपात में नहीं जिन्हे उनकी उपज कपड़ा और आश्रय दे सकती है बल्कि उनकी उस सख्या के अनुपात में आवा होने हैं, जिन्हे वह भोजन दे सकती है।" (ऐड स्मिथ, पूर्वोक्त, खंड १, पृ० १४६ [Garnier, t. I, p 342] )

"भोजन के बाद कपड़ा और आवास ही मानवजा की दो बड़ी आवश्यकताएं हैं।" के धाम तौर से किराया प्रदान करते हैं, पर अनिवार्य ही नहीं (पूर्वोक्त, खंड १, पृ० १४७ [Garnier, t. I, pp 338] ) | VI 1







वृद्धि के सर्वप्रथम है। बढ़ने किराया मकान और बढ़ती निर्धनता के बीच मध्य भूस्वामी के समाज में हित का एक उदाहरण है, क्योंकि जमीन का किराया, मकान जिस जमीन पर स्थित होता है, उसमें प्राप्त होनेवाला आय, मकान के किराये के साथ बढ़ जाता है।

(२) स्वयं व्यवसायियों के ही अनुसार भूस्वामी का हित पट्टेदार के हित के—और इस प्रकार समाज के एक महत्वपूर्ण घटक के—समक्ष विरुद्ध होता है।

IXI, 3। (३) चूंकि भूस्वामी पट्टेदार में उतना ही अधिक किराया माग सकता है, जितना कम पट्टेदार मजदूरी देता है, और चूंकि पट्टेदार मजदूरी को उतना ही नीचे घटेलना है, जितना अधिक भूस्वामी किराया मागता है, इसलिए निष्कर्ष यह निकलता है कि भूस्वामी का हित खेतिहर मजदूरों के हित का उतना ही विरोधी होता है, जितना कारखानेदारों का हित अपने मजदूरों के हित का विरोधी होता है। वह भी इसी प्रकार मजदूरी को निम्नतम पर घटेलना है।

(४) चूंकि उद्योगों के मालों के दाम में वास्तविक कमी जमीन के किराये की वजह से, इसलिए औद्योगिक मजदूरों की मजदूरी को गिराने में, पूँजीपतियों के बीच प्रतिद्वंद्विता में, अत्युत्पादन में, औद्योगिक उत्पादन के साथ सबूद्ध जारी दुरावस्था में, भूस्वामी का प्रत्यक्ष हित होता है।

(५) जहाँ इस प्रकार भूस्वामी का हित समाज के हित के सर्वप्रथम होने की बात तो दगकिनार, वह पट्टेदारों, खेतिहर मजदूरों, कारखाना मजदूरों और पूँजीपतियों के हित के समक्ष विरुद्ध होता है, वहाँ दूसरी ओर, एक भूस्वामी का हित उस प्रतिद्वंद्विता के कारण, जिस पर हम

घर दिखाए रहने, दूसरे भूमिपति नर के लिए के लिए  
नहीं होता।

सामान्य रूप से बड़ी छोटी भूमिपति का अंतर  
छोटी छोटी भूमि के मध्य जैसा ही है। लेकिन इन दोनों  
में भी विशेष परिस्थितियाँ होती हैं, जो परिभाषा को  
भूमिपति के मध्य छोटी उनके द्वारा छोटी भूमिपति के सामान्य  
की छोटी में आती है।

॥ XII, 3 ॥ (१) स्टॉक (भूमि) के आधार में वृद्धि के  
साथ मजदूरों और उपकरणों की मापें मध्य छोटी के  
उपयोग में नहीं घटती, जिनकी वृद्धि में पड़ती है।  
प्रकार स्टॉक के आधार में वृद्धि के साथ सर्वोत्तम की  
की, उत्पादन मात्रा को बढ़ाने की, और कारण  
विभाजन की संभावना और वही उनमें अधिक तब तक  
जितनी वृद्धि में। खेत चाहे जितना छोटा क्यों न हो, उसे  
कायम किये जाने के लिए उपकरणों (हल, धारा, धारि  
के एक विशेष न्यूनतम की आवश्यकता होती है, जब  
भूमिपति के टुकड़े के आधार को इस न्यूनतम के कहीं भी  
तक बढ़ाया जा सकता है।

(२) बड़ी भूमिपति उस भूमि पर ध्यान को अपने  
मजदूर लेती है, जिसे पट्टेदार ने जमीन को सुधारने के लिए  
नियोजित किया है। छोटी भूमिपति को स्वयं अपनी भूमि  
नियोजित करनी होती है, और इसलिए उसे यह लाभ नहीं  
नहीं मिलता है।

(३) जहाँ हर सामाजिक सुधार बड़ी भूमिपति को लाभ  
पहुँचाता है, वहाँ वह छोटी भूमिपति का नुकसान करता है।  
क्योंकि वह नरदी की आवश्यकता को बढ़ा देता है।

(४) इस प्रतिद्वंद्विता ने दो महत्वपूर्ण निष्कर्षों पर विचार  
करना अभी बाकी रहता है:

(क) कर्पिन\* भूमि का किराया, जिसकी उपज मानव आहार है, अन्य कर्पिन भूमि के अधिकांश के किराये का नियमन करता है। (ग्रेडम रिमिथ, पूर्वोक्त, घट १, पृ० १४४ [Garnier, t 1, p 331])

अन्य केवल बड़ी भू-संपत्ति ही पशु, आदि जैसा आहार उत्पन्न कर सकती है। इसलिए वह दूसरी जमीनों के किराये का नियमन करती है और उसे किराया न्यूनतम पर ले जा सकती है।

यह स्वयं अपनी जमीन पर काम करनेवाले छोटे भूस्वामी का बड़े भूस्वामी की संपत्ति में बड़ी बाधा होता है, जो कारखाना मालिक की संपत्ति में अन्य अपने छोटे-बड़े कारीगर का होता है। छोटी भू-संपत्ति एक धर्म उपकरण मात्र बन गयी है। ॥ XVI, 11<sup>10</sup> छोटे मालिकों के लिए किराया सर्वथा विलुप्त हो जाता है, उनके लिए हड़ में हड़ अपनी पूँजी पर व्याज और अपनी मजदूरी ही बाकी रह जाती है। कारण कि किराये की प्रतिद्वंद्विता द्वारा हमने नीचे किराया जा सकता है कि वह मालिक द्वारा न निवेशित की गयी पूँजी पर व्याज में अधिक कुछ भी नहीं रहता।

(ख) हमारे सामने हम पहले ही जान चुके हैं कि जमीन, जंगल तथा मत्स्यशेखरी की समान उर्वरता और समान वन जोषण के साथ उपज पूँजी के आकार के समानुपात होती है। अतएव बड़े भू-स्वामी की विशेष प्रतिबाध है। इसी प्रकार जहाँ समान पूँजिया निर्योजित की जाती है, वहाँ उपज उर्वरता के समानुपात होती है। यह जहाँ पूँजिया

\* पादुलिनि में "कर्पिन" के बजाय "उत्पादित" है। - १०



यह विचार करेंगे, हमारे मूल्यांशों का वह किसके लिये नहीं होता।

सामान्य रूप में बड़ी और छोटी भू-मर्यादा का अर्थ और छोटी पूँजी के मध्य जैसा ही है। लेकिन इन दोनों विशेष परिस्थितियाँ होती हैं, जो परिवर्तन की मर्यादा के मध्य और उसके द्वारा छोटी मर्यादा के अन्तर्गत भी और ले जाती हैं।

॥ XII, 3 ॥ (१) स्टॉक (पूँजी) के आधार में दो साथ मजदूरों और उपकरणों की मापें सदा और उससे अधिक नहीं पड़ती, जितनी कृषि में बढ़ती हैं। प्रथम स्टॉक के आधार में वृद्धि के साथ सर्वोत्तम होती, उत्पादन लागतों को घटाने की, और कारण की विभाजन की संभावना और वही उससे अधिक नहीं बढ़ती जितनी कृषि में। खेत चाहे कितना छोटा क्यों न हो, उसे काम किये जाने के लिए उपकरणों (हम, मादा, बगी) के एक विशेष न्यूनतम की आवश्यकता होती है, जब कि भू-मर्यादा के दुबड़े के आधार को इस न्यूनतम के बही नहीं तक घटाया जा सकता।

के बाद क्यूबा और सेट-डोमिंगो की खदानों के साथ ,  
और वेरु की प्राचीन खदानों तक के साथ भी यही  
हुआ था ।" ( पूर्वोक्त , खंड १, पृ० १५४ [Garnier,  
t I, p 353] )

स्पष्ट पता जो बाल खदानों के बारे में कहते हैं , यह  
आम्य रूप में भू-संपत्ति पर भी समीक्षण लागू होगी है

( ष ) ' यह दृष्टव्य है कि जमीन का माघाग्न  
बाजार दाम हर वही बाजार की माघाग्न व्याज दर  
पर निर्भर करता है। अगर द्रव्य के व्याज में  
जमीन का किराया ज्यादा घटने में कम हो जाये ,  
तो कोई भी जमीन नहीं खरीदेगा , जो बन्दी ही उसके  
साधारण दाम को घटा देगा। इसके विपरीत अगर  
साम घटने की दृष्टिगति में बड़ी अधिक होने है ,  
तो हर कोई जमीन खरीदेगा , जो बन्दी ही फिर उसके  
माघाग्न दाम को बढ़ा देगा ।" ( पूर्वोक्त , खंड १,  
पृ० ३२० [Garnier, t II pp 367-368] )

जमीन के किराये के द्रव्य पर व्याज के साथ इस संबंध  
में यह निष्कर्ष निकलता है कि किराया उत्तरोत्तर गिरना  
ही जायेगा , जिससे कि अन्त केवल सबसे खनवान लोग  
ही किराये पर भी सकें। परिणामतः उन भूस्वामियों के बीच  
बड़ा अधिक प्रतिद्वन्द्विता होगी है , जो अपनी जमीन कामगारों  
को पट्टे पर नहीं देते हैं। उनमें में कुछ की बग़दाही , बड़ी  
भू-संपत्ति का और अधिक संचयन।

॥ XVII, 2 । इस प्रतिद्वन्द्विता का और परिणाम यह होता है  
कि भू-संपत्ति का काफी बड़ा भाग पूँजीपतियों के हाथों में  
जा पड़ता है और यह कि पूँजीपति इस प्रकार साथ ही  
भूस्वामी बन जाते हैं , ठीक जैसे उनमें छोटे भूस्वामी अब

कुल विमाकर पूत्रीपतियों से अधिक और कुछ नहीं होते इसी प्रकार बड़े भूस्वामियों का एक घन माप ही उद्योगिकों में परिणत हो जाना है।

इस प्रकार अन्तिम परिणाम पूत्रीपति तथा भूस्वामी के बीच भेद का उन्मूलन, जिससे आबादी के समूचे तौर पर निर्णय दो वर्ग ही बचने रह जाते हैं—यमजीवी वर्ग और पूत्रीपतियों का वर्ग। भू-सपत्ति के साथ वह खुदोतरांगी, भू-सपत्ति का एक जिस में स्थानात्मक ही पुराने अभिमान तब की निर्णायक पराजय और वित्तीय अभिमान तब की निर्णायक स्थापना है।

(१) हम इस पर भावनात्मक अथुप्रवाह से हमानियन का साथ नहीं देंगे। हमानियन समीन को खुर्दकरोशी की शर्मसारी को हमेशा जमीन में निजी सपत्ति को खुर्दकरोशी के पूर्णतः तर्कसंगत, निजी सपत्ति के अधिराज्य में अनिवार्य और वांछित परिणाम के साथ उत्तर देती है। एक ही यही कि सामंती भू-सपत्ति वैसे भी अपने स्वभाव से खुर्दकरोशन जमीन है—जमीन, जो आदमी से वित्तवर्धन कर दी गयी है और इसलिए उसके सामने कुछ बड़े सामंतों की सूरत में जाती है।

भूमि का लोगो पर एक परकीय शक्ति के नाते प्रभुत्व सामंती भू-सपत्ति में अंतर्निहित है। भूदाय जमीन का पुछला होता है। इसी प्रकार दायकमनिर्दिष्ट जमीन का प्रभु, प्रथम पुत्र, जमीन का होता है। वह उसे दाव में प्राप्त करता है। वस्तुतः निजी सपत्ति का प्रभुत्व भू-सपत्ति के साथ ही जुड़ होता है—वह उसका आधार है। लेकिन सामंती भू-सपत्ति में सामंत कम से कम जागीर का गन्ना अंतर्गत होता है। इसी प्रकार बड़ा स्वामी और भूमि के बीच

कोरी भौतिक संपदा के मरघ की अपेक्षा अधिक अनिष्ट  
 रघ का आभास अब भी बना रहता है। जागीर को उसके  
 मु के साथ व्यक्तीकृत किया जाता है। उसे उमका घोड़ा  
 प्त होता है, वह वैरनीय या द्यूनीय होनी है, उसके  
 निपाधिकार, उमका सेवाधिकार, उमकी राजनीतिक  
 सिपन, आदि रखनी है। यह अपने प्रभु के निरवध शरीर  
 ी तरह प्रकट होनी है। इसीमे *maître terre sans*  
*allure*\* की कहावत निक्ली है, जो अधिकार का और  
 [सपति के सत्पन को व्यक्त करती है। इसी प्रकार भू-  
 पति का शासन प्रत्यक्ष मात्र पृथ्वी के सामन की तरह  
 ही प्रकट होता। उमके आनेवानों के लिए जागीर उनकी  
 मृमृमि जैसी अधिक होनी है। यह एक मधुचिन् प्रका  
 ी राष्ट्रीयता है।

§ XVIII, 2। इसी प्रकार सामंती भू-सपति धन प्रभु  
 ी अपना नाम दे देती है, जैसे राज्य अपने राजा को दे  
 ता है। उमका पारिवारिक इतिहास, उमके कुल का इतिहास,  
 प्रादि—यह सब जागीर को उमके लिए व्यक्तीकृत कर देता  
 है और उसे शब्दत उमका कुल बना देता है, उसे मानवीकृत  
 कर देता है। इसी प्रकार जागीर पर काम करनेवालों की  
 स्थिति ऐनिक अधिकों की नहीं होनी, बल्कि वे आशिर  
 रूप में स्वयं उमकी सपति होते हैं, जैसे भूदाम होते हैं,  
 और आशिक रूप में वे उमके साथ आदर, निष्ठा और  
 कर्तव्य के बंधनों में जुड़े होते हैं। अतः उनके साथ उमका  
 मधुध प्रत्यक्ष राजनीतिक होता है, और इसी प्रकार उमका  
 एक मानवीय, अतएव पहलू भी होता है। रिवाज, स्वभाव,

\* बिना मिम्बी मिल्क नहीं।—म०







जानी है। भू-संपत्ति के विभाजन का एक बड़ा सुनाम यह है कि जनमाधारण, जो दामन को अब और अधिक स्वीकार नहीं कर सकते, संपत्ति के जगह उममें भिन्न नरीके में धन को प्राप्त होने है, जिसमें उद्योग में होने है।

यहां तक बड़ी भू-संपत्ति की बात है, उनके पैग्वीकारों ने हमें ही कुतर्कनापूर्वक, बड़े पैमाने की कृषि द्वारा प्रदत्त सुनामों का बड़े पैमाने की भू-संपत्ति के साथ तदाल्पीकरण किया है, मानो यह वस्तु संपत्ति के उन्मूलन के परिणामस्वरूप ही न होगा कि एक तो ये सुनाम अपना ॥ XX, ॥ अधिकतम समय विस्तार प्राप्त करें, और, दूसरे, केवल यह ही सामाजिक रूप से उपयोगी होने। इसी प्रकार उन्होंने छोटी भू-संपत्ति की खुराकरोशी की प्रवृत्ति पर आक्षेप किया है, मानो बड़ी भू-संपत्ति अपने में, अपने सामग्री रूप तक में—आधुनिक सभ्यता की तो बात ही क्या, जो भूस्वामी के सामंतवाद को पट्टेदार की खुराकरोशी और उद्यमशीलता के साथ जोड़ती है,—अतर्निहित खुराकरोशी न रखती हो।

जिस प्रकार बड़ी भू-संपत्ति अपने विरुद्ध विभाजित जमीन द्वारा लगाये गये एकाधिकार के उपालभ को लौटा सकती है, क्योंकि विभाजित जमीन की निजी संपत्ति के एकाधिकार पर ही आधारित है, उसी प्रकार विभाजित भू-संपत्ति भी बड़ी भू-संपत्ति को विभाजन का उपालभ लौटा सकती है, क्योंकि विभाजन वहां भी प्रचलित है, यद्यपि एक धनम्प और निश्चयन रूप में। वस्तुतः निजी संपत्ति पूर्ववत् विभाजन पर ही आधारित है। इसके अलावा जिस प्रकार जमीन का विभाजन पूंजीवादी संपदा के एक रूप के नाते बड़ी भू-संपत्ति की तरफ वापस ले जाना है, उसी प्रकार सामग्री भू-संपत्ति को भी अनिवार्यतः विभाजन की तरफ ले जाना होगा या











प्रतीत होता है। राजनीति धर्मशास्त्र विन होने से  
को बनायेमान करना है, वे हैं तोम और तोमियों वे बन  
में लड़ाई—प्रतिद्विष्टता।\*

टीक इसलिए कि राजनीति धर्मशास्त्र नहीं बनता कि  
गति किन रूप से संबद्ध है, यह समझ या कि, उदाहरण  
के लिए, प्रतिद्विष्टता के मिश्रण को एकाधिकार के मिश्रण  
के, शिल्पो की स्वतंत्रता के मिश्रण को शिल्प के मिश्रण  
के, भू-संपत्ति के विभाजन के मिश्रण को बड़ी भू-संपत्ति के  
मिश्रण के भू-संपत्ति पर रखा जाये—क्योंकि प्रतिद्विष्टता,  
शिल्पो की स्वतंत्रता और भू-संपत्ति के विभाजन को केवल  
एकाधिकार के, शिल्प प्रणाली के, और सामंती संपत्ति के  
साथोंगिक, पूर्वविकेचिन और प्रचंड परिणामों की तरह ही,  
न कि उनके आवश्यक, अपरिहार्य और स्वाभाविक परिणामों  
की तरह समझा और समझाया जाता था।

इसलिए अब हमें निजी संपत्ति, लोभ, और धर्म, पूँजी  
तथा भू-संपत्ति के पुनर्करण के बीच अनर्भूत संबंध को  
समझना है; विनिमय और प्रतिद्विष्टता का, मनुष्य के मूल्य  
और अवमूल्यन, एकाधिकार और प्रतिद्विष्टता, भाषि का  
भाषती संबंध—हमें इन्व प्रणाली से जुड़े इस समस्त विद्योक्त  
को समझना है।

हमें एक कल्पित भाष अवस्था पर वापस नहीं चले जाना  
चाहिये, जैसे राजनीतिक धर्मशास्त्री व्याख्या करने का प्रयास  
करते समय चला जाना है। ऐसी भाष अवस्था किसी भी

\*राहुलवि ने इस पैराग्राफ के बाद यह वाक्य बढ़ा हुआ  
है: "हमें सब संपत्ति की इस भौतिक गति की प्रकृति की  
परीक्षा करना है।"—स०





























भादमी का है। अगर मजदूर का क्रियाकलाप उसके लिए  
यत्न है, तो दूसरे को वह संतोष और सुख प्रदान करता  
होगा। मनुष्य के ऊपर यह इतर शक्ति न देवता और न  
प्रकृति, बल्कि स्वयं मनुष्य ही हो सकता है।

हमें इस पूर्वोक्त प्रस्थापना को ध्यान में रखना चाहिये  
कि मनुष्य का स्वयं के साथ मगध सिर्फ उससे दूसरे भादमी  
के साथ मगध के जरिये ही उसके लिए वस्तुपरक और  
वास्तविक बनता है। इस प्रकार अगर उसके धन का उत्पाद,  
उसका वस्तुकृत धन, उसके लिए एक उसमें स्वयं, इतर,  
प्रतिकूल, शक्तिशाली वस्तु है, तो उसके प्रति उसका संबंध  
इस तरह का है कि कोई और इस वस्तु का स्वामी है,  
ऐसा कोई, जो उससे इतर, प्रतिकूल, शक्तिशाली और  
स्वतंत्र है। अगर वह स्वयं अपने क्रियाकलाप को धार्मिक  
क्रियाकलाप मानता है, तो वह उसे दूसरे भादमी की शक्ति  
में, उसके प्रभुत्व, दबाव और बुद्धि के अंतर्गत किया जाने-  
वाला क्रियाकलाप समझता है।

स्वयं से और प्रकृति से मनुष्य का आत्मविवेचन उस  
संबंध में प्रकट होता है, जिसमें वह स्वयं को और प्रकृति  
को अपने से अलग और विभेदित मनुष्यों की सापेक्षता में  
रखता है। इस कारण सामाजिक भादमी के पुरोहित के  
साथ, अथवा किसी मध्यस्थ, धार्मिक के साथ संबंध में भी,  
क्योंकि हम यहाँ नीतिगत अंगत की बात कर रहे हैं, धार्मिक  
आत्मविवेचन अनिवार्यतः आ जाता है। वास्तविक व्यावहारिक  
अंगत में आत्मविवेचन केवल दूसरे लोगों के साथ वास्तविक  
व्यावहारिक संबंध के जरिये व्यक्त हो सकता है। विवेचन  
जिस माध्यम के जरिये होता है, वह स्वयं व्यावहारिक है।  
इस प्रकार विवेचित धन के जरिये मनुष्य सिर्फ वस्तु के



घोर स्वयं के साथ बाह्य सबंध का उत्पाद, फल, अनिवार्य परिणाम है।

इस प्रकार विश्लेषण द्वारा निजी संपत्ति इतरीभूत धर्म की, अर्थात् इतरीभूत मनुष्य की, वियोजित धर्म की, वियोजित जीवन की, वियोजित मनुष्य की, सकल्पना में उत्पन्न होती है।

यह ठीक है कि यह निजी संपत्ति की सत्ति के परिणामस्वरूप ही है कि हमने राजनीतिक अर्थशास्त्र में इतरीभूत धर्म (इतरीभूत जीवन) को सकल्पना को प्राप्त किया है। लेकिन इस सकल्पना का विश्लेषण दिखाना है कि चाहे निजी संपत्ति इतरीभूत धर्म का कारण घोर आधार प्रतीत होगी है, वास्तव में वह उसका परिणाम ही है, ठीक जैसे देवगण मूलतः मनुष्य की बौद्धिक शक्ति का कारण नहीं, बल्कि परिणाम ही हैं। बाद में जबकि यह सबंध अन्वयोन्य बन जाता है।

केवल निजी संपत्ति के विकास के अग्र बिंदु पर जाकर ही यह, उसका रहस्य, फिर प्रकट होता है, अर्थात् यह कि एक घोर तो वह इतरीभूत धर्म का उत्पाद है, और यह कि दूसरी घोर वह धर्म का अपने को इतरीभूत करने का साधन, इस इतरीभवन का सिद्धिकरण है।

यह प्रस्तुतीकरण तत्काल भ्रम तक धनमुक्तों विभिन्न विवादों पर प्रकाश डाल देता है।

(१) राजनीतिक अर्थशास्त्र धर्म का उत्पादन की वास्तविक आत्मा मानकर अपना है; फिर भी वह धर्म को कुछ भी नहीं, और निजी संपत्ति को सभी कुछ दे देता है। इस धर्मविरोध को लेकर मूढ़ों ने निजी संपत्ति के विरुद्ध धर्म के पक्ष में निष्कर्ष निकाले हैं।<sup>११</sup> लेकिन हमारी समझ है कि







कृति को अपने धर्म द्वारा विनियोजित करता है, यह विनियोजन वियोजन, उसका धर्म स्वतः स्फूर्त क्रियाकलाप दूसरे भादमी के लिए क्रियाकलाप और दूसरे भादमी का क्रियाकलाप, जीवन बल जीवन का बलिदान, वस्तु का उत्पादन वस्तु का एक इतर शक्ति के लिए, एक इतर व्यक्ति के लिए ओष प्रतीत होता है—अब हम मजदूर के साथ, धर्म और उसके विषय के साथ इस व्यक्ति के संबंध पर विचार करेंगे, जो धर्म और मजदूर के लिए इतर है।

पहले यह ध्यान में रखना होगा कि वह सब, जो मजदूर में इतरीमवन के, वियोजन के क्रियाकलाप की तरह लगता है, वह गैर-मजदूर में इतरीमवन की, वियोजन की अवस्था की तरह लगता है।

दूसरे, यह कि उत्पादन में और उत्पाद के प्रति मजदूर का वास्तविक, व्यावहारिक रवैया (एक मानसिक अवस्था की तरह) उसके सामने लगे गैर-मजदूर से संघर्षात्मक रवैया भिन्न होता है।

॥ XXVII ॥ तीसरे, गैर-मजदूर मजदूर के खिलाफ वह सभी कुछ करता है, जो मजदूर अपने खिलाफ करता है, लेकिन वह अपने खिलाफ वह नहीं करता, जो वह मजदूर के खिलाफ करता है।

भाइये, इन तीनों संबंधों पर अधिक निकट से दृष्टिपात करें।\* ॥ XXVII ॥

---

\* इन स्थल पर पहली पाइलिपि अधूरी छूट जाती है। — स \*























को धारण में जोड़ने का, जनगण में मैत्री का संवर्धन करने-  
 बाने व्यापार को जन्म देने का, सुद्ध नैतिकता और मुख्यशायी  
 मरुति का सुकर करने का, लोगों की समस्त आवश्यकताओं  
 के स्थान पर सम्यक् आवश्यकताएं और उन्हें सुष्ट करने के  
 साधन प्रदान करने का दावा करती है। उसका दावा है कि  
 उधर भूमिामी—बहु निडरता, परजीवी बनना मुनाफाखोर—  
 लोगों की बुनियादी जरूरत की चीजों के दाम को बढ़ा देना  
 है और इसलिए पूँजीपति को उत्पादित बढाने में मश्रम हुए  
 बिना मजदूरी बढ़ाने के लिए मजबूर करता है, इस प्रकार  
 राष्ट्र की वार्षिक आय [की वृद्धि को], पूँजी-मजदूर को,  
 और फलन लोगों के लिए काम और देश के लिए संपदा  
 उपलब्ध करने की संभावना में बाधा डालता और भ्रमन  
 निरस्त कर देता है और इस प्रकार सामाज्य हानि पैदा  
 करता है—जब कि वह प्राधुनिक संभ्यता के प्रत्येक मुनाफ  
 का, उसके लिए न्यूनतम भी बिचे बिना और अपने सामंती  
 पूर्वाग्रहों को नजिक भी घटाये बिना—परजीवीवन लाभ  
 उठाता है। अतः, उसे—जिसके लिए जमीन के काल  
 बिचे जाने और स्वयं जमीन का निर्फ. घन के स्रोत के ताने  
 ही अस्तित्व है, जो उसके पास भेंट की तरह धाना है—  
 उसे अपने पट्टेदार पर जरा एक मजूर भर डालने दीजिये  
 और कहने दीजिये कि क्या वह खुद एक पक्का, विलक्षण,  
 घूर्त बदमाश नहीं है, जो अपने दिल में और अमनियन में  
 बहुत लंबे धरमे में मुक्त उद्योग और मनोहर व्यापार के  
 माय मज्मन रूढ़ा है, चाहे वह किनना ही प्रतिवाद और  
 ऐतिहासिक स्मृतियों और नैतिक अथवा राजनीतिक लक्ष्यों  
 के बारे में अवश्यक क्यों न करे। अपना धीनित्य-स्थान करने  
 के लिए वह वास्तव में जो कुछ भी वह सकता है, वह निर्फ.









[illegible]

इस प्रकार धन का सामान्य नाम धर्म का दर्पण सिद्ध हो जाता है। नैतिक भाव ही इस एकमात्र उपायक रूप है। धर्म धर्म की प्रथा उसकी व्याख्या और समझ में नहीं लगता था। वह सब भी तो दिनेश मैगर्सिंह तत्व के भाव उसके चरित्र के रूप से जुड़ा हुआ है। जो इन्हीं बड़े वैभव प्रकृति द्वारा निर्धारित एक विशेष अर्थ में ही जाना जाता है। इसलिए वह सब भी मनुष्य का निमित्त, विशिष्ट इंगीमजन ही है, जिन उनके उत्साह को भी इस प्रकार-स्वयं धर्म के कारण इनका नहीं, जिनका प्रति के कारण-लगभग धन का एक विशिष्ट रूप [जैसा] ही समझा जाता है। अभीन को यहाँ सब भी मनुष्य से निरंतर प्रकृति की परिपटना की तरह-सभी पूजी की तरह नहीं। अर्थात् स्वयं धर्म के ही एक पक्ष की तरह नहीं-माना जाता है। उनसे, धर्म अभीन के एक पहलू की तरह माने जाता है। लेकिन चूंकि पुरानी वादा संपदा, केवल एक धर्म के रूप में अस्तित्वमान संपदा, की जड़धरा को एक बहुत ही सरल नैतिक तत्व में परिणत कर दिया गया है, और चूंकि उसके सार को—चाहे केवल अज्ञान और एक विशेष रूप में ही नहीं—उम्मे सामान्य अस्तित्व के भीतर मान लिया गया है, इसलिए धन के सामान्य स्वरूप को प्रकट

करने और इसलिए धर्म को अपनी पूर्ण भरणना में ( धर्मान्तरापेक्षता में ) सिद्धांत के रूप में उठाने की दिशा में आवश्यक आगे कदम उठा लिया गया है। प्रवृत्तिवाद के विनाश यह इन्हीं की प्राप्ति है कि कृषि आर्थिक दृष्टिकोण में—धर्मान्तर करने का मतलब यह कि एवमात्र मान्य दृष्टिकोण में—किसी भी अन्य उद्योग में भिन्न नहीं है, और यह कि इसलिए धर्म का सार किसी विशेष तत्व के साथ जुड़ा धर्म का कोई विशेष रूप—धर्म की कोई विशेष अभिव्यक्ति—नहीं, बल्कि सामान्य रूप में धर्म ही है।

धर्म को धर्म का सार घोषित करके प्रवृत्तिवाद विशेष, बाध्य, भाव्य वस्तुरूप संपदा को सम्बोद्ध करता है। लेकिन प्रवृत्तिवाद के लिए धर्म धर्म में सिर्फ भू-संपत्ति का आत्मगत सार ही है। ( यह संपत्ति के उस प्रकार में सम्मान करता है, जो इतिहास की अभिप्राय और मान्य प्रकार प्रतीत होता है। ) यह केवल भू-संपत्ति को ही इतरीभूत मनुष्य में परिणत करता है। यह उद्योग ( कृषि ) को उमरा सार घोषित करके उसके सामग्री स्वरूप को निराकृत कर देता है। लेकिन यह उद्योग की दुनिया को सम्बोद्ध करता है और कृषि को एवमात्र उद्योग घोषित करके सामग्री व्यवस्था को स्वीकार करता है।

यह स्पष्ट है कि धर्म धर्म उद्योग का आत्मगत सार ( उद्योग के भू-संपत्ति के विरोध में होने का, धर्मांत उद्योग के रूप को उद्योग के रूप में सविज्ञान करने का ) विचारधीन है, तो यह सार अपने भीतर अपने विनाश को समाविष्ट करने हुए है। कारण कि जिस प्रकार उद्योग में निराकृत भू-संपत्ति समाविष्ट है, उसी प्रकार उद्योग के आत्मगत सार में साथ ही भू-संपत्ति का आत्मगत सार समाविष्ट है।





धन वा ( अर्थात् मनुष्य के वस्तुगत मूल्य का ) समस्त समार  
 भी निजी संपत्ति के स्वामी के माय अनन्य विवाह संबंध में  
 समुदाय के माय सार्विक वस्तुवृत्ति की व्यवस्था में चला  
 जाता है। इस प्रकार का कम्युनिज्म—क्यानि वह मनुष्य  
 के व्यक्तित्व को प्रत्येक क्षेत्र में नकारता है—निजी संपत्ति  
 की तरंगमय अभिव्यक्ति मात्र है, जो यह निषेध है। सामान्य  
 ईर्ष्या का अपने को एक शक्ति बना लेना ही वह आवरण  
 है, जिसमें सीधे अपने को पुनर्स्थापित करना और अपने  
 को मृष्ट करता है, समझता दूसरे द्वय में। अपने में हर  
 निजी संपत्ति—कम से कम संयोजनर निजी संपत्ति के प्रति—  
 ईर्ष्या और बराबरी का स्तर पाने की मासमा महसूस करती  
 है, जिससे यह ईर्ष्या और सापसा प्रतिवृद्धि का मार्ग नर  
 बन जाती है। अपरिपक्व कम्युनिज्म इन ईर्ष्या की और  
 पूर्वस्थित स्तुतम में उद्भूत इस भ्रमरण का चरम मात्र  
 है। उसका एक निश्चयन, सीमित मानक है। निजी संपत्ति  
 का यह निगकरण यद्यपि में उसका विनियोजन बिना कम है,  
 यह वस्तुतः सत्त्वति तथा सभ्यता के समस्त विषय के समुर्न  
 निषेध, निर्धन तथा अपरिपक्व मनुष्य की अस्वाभाविक  
 ॥ IV ॥ सरलता की और पञ्चवसन में सिद्ध होता है, जिसकी  
 आवश्यकताएं सीधी ही होती हैं और जो न केवल निजी  
 संपत्ति के प्राप्ति जाने में ही असफल रहा है, बल्कि अभी  
 उन तक पहुंचा भी नहीं है।

माशापन वैदिक धर्म का साक्षात्पन और सामुदायिक पूजा  
 द्वारा—सार्विक पूजापति के नाते समुदाय द्वारा—दी जानेवाली

साधक है—इसलिए पूजापति, यदि भी इसी सीपक के  
 भवर्धन माना है।—मार्क्स की टिप्पणी।<sup>25</sup>

जिन प्रकार मूर्धन्यता निजी संपत्ति का रहना है और ईतिहासिक उद्योग प्रारम्भ में उमरों सामने निर्रुद्ध होते हैं एक विशेष प्रकार के माने—अथवा यों कहें कि मूर्धन्यता के शिष्टाचार मान के माने—ही माना है, उमरों प्रकार में प्रविष्टा करने धारणों निजी संपत्ति के आत्मगत तार, धन के वैज्ञानिक विश्लेषण में दृढ़रानी है। मम प्रारम्भ में ही धन की तरह प्रकट होना है, लेकिन फिर वह अपने को सामान्य रूप में धन की तरह स्थापित कर लेता है।

॥ 111 ॥ सारा धन भौतिक धन, धन का धन, धन का है, और उद्योग निष्पादित धन है, ठीक जैसे कारखाने व्यवस्था उद्योग का, धर्मात्त धन का, परिपूर्ण तार है, और ठीक जैसे भौतिक धन निजी संपत्ति का परिपूर्ण वस्तुगत रूप है।

धन हम देख सकते हैं कि क्यों ठीक इस स्थिति पर ही निजी संपत्ति मनुष्य पर अपने प्रभुत्व को संपूर्ण कर सकती है और, अपने सबसे सामान्य रूप में, एक विश्वैतिहासिक शक्ति बन सकती है।

## [निजी संपत्ति और कम्युनिज्म]

पृ० XXXIX के बारे में।\* जब तक उसे धन और पूंजी के बीच विरोध की तरह नहीं समझा जाता है, तब तक संपत्ति के अभाव और संपत्ति के बीच विरोध अपने सक्रिय संयोजन में, अपने आंतरिक मरघट में न ग्रहण किया गया, धन भी एक अंतर्विरोध के रूप में न ग्रहण किया

\* इसका अर्थ दूसरी पाह्निषि के मूल धन से है।—स०

गया उदासीन विरोध ही बना रहता है। अपने इस पहले रूप में वह निजी संपत्ति के अग्रिम विकास के बिना भी अभिव्यक्ति या सक्रियता है (जैसे प्राचीन रोम, तुर्की, आदि में)। वह सभी स्वयं निजी संपत्ति द्वारा स्थापित किया गया नहीं प्रतीत होता। लेकिन धर्म—निजी संपत्ति के अपवर्जन के रूप में निजी संपत्ति का आत्मगत सार, और पूँजी—धर्म के अपवर्जन के रूप में वस्तुगत धर्म, अंतर्विरोध की विकसित अवस्था के रूप में—अंत समाधान की ओर अग्रसर एक अत्यात्मक संघर्ष के रूप में—निजी संपत्ति का संचित करते हैं।

उसी पृष्ठ के बारे में। आत्मवियोजन के अतिक्रमण का वही अन्त रहता है, जो आत्मवियोजन का। निजी संपत्ति को पहले उसके सिकड़े वस्तुगत रूप में ही—किंतु फिर भी धर्म को उसके मार-रूप में लेने हुए ही—विचार में लाया जाता है। अंत उसका अस्तित्व-रूप पूँजी है, जिसे “उसी रूप में” (प्रूडो) निराकृत कर दिया जाना है। अथवा धर्म के एक विशेष रूप—अवनत किये, विखंडित, और कलत अस्वतंत्र धर्म—की निजी संपत्ति की अभिव्यक्ति के ओर लोगों में वियोजन में उसके अस्तित्व के खोत की तरह कल्पना की जाती है। उदाहरण के लिए कुरिये, जो प्रकृति-समवादिषी की ही भांति, कृषि धर्म को कम से कम अनु-करणीय प्रकार का मानते हैं, जब कि वे सीधे इसके विपरीत कहते हैं कि औद्योगिक धर्म अपने में सार है, और इसलिए उद्योगपतियों के अनन्य आश्रय और मजदूरों की अवस्था में सुधार की आकांक्षा करते हैं। अतिस ज्ञात, कम्प्युनिस्म १—धारण में सार्वजनिक निजी संपत्ति के



धन का ( अर्थात् मनुष्य के वस्तुगत मत्त्व का ) समस्त समार  
 भी निजी संपत्ति के स्वामी के साथ अनन्य विवाह संबंध में  
 समुदाय के साथ सार्विक वैभवावृत्ति की अवस्था में बना  
 जाता है। इस प्रकार का कम्युनिज्म—क्योंकि वह मनुष्य  
 के अस्तित्व को प्रत्यक्ष लोक में नकारता है—निजी संपत्ति  
 की सर्वोपरि अभिव्यक्ति मात्र है, जो यह निषेध है। सामाज्य  
 ईर्ष्या का धरने को एक शक्ति बना लेना ही वह आवरण  
 है, जिसमें लोग धरने को पुनः स्थापित करना और धरने  
 को तोड़ करना है, सम्भवता दूसरे ढंग में। धरने में हर  
 निजी संपत्ति—कम से कम अपेक्षित निजी संपत्ति के प्रति—  
 ईर्ष्या और बराबरी का स्तर पाने की मान्यता महसूस करती  
 है, जिससे यह ईर्ष्या और मान्यता प्रतिद्वंद्विता का मार्ग तय  
 हो जाती है। अतः कम्युनिज्म हम ईर्ष्या की और  
 पूर्वकल्पित स्वभूतम में उद्भूत इस समझरण का कार्य मान  
 है। उमका एक निश्चित, सीमित मानक है। निजी संपत्ति  
 का यह निगमण यथार्थ में उमका विनियोजन विनया कम है,  
 यह वस्तुतः सत्त्वित तथा भव्यता के समस्त विषय के समस्त  
 निषेध, निर्धन तथा अतृप्त मनुष्य की सम्भाव्यता  
 ॥ IV ॥ सरलता की ओर पश्चगमन में निम्न होता है, जिसकी  
 आवश्यकताएँ योही ही होती हैं और जो न केवल निजी  
 संपत्ति के धारण करने में ही सम्भव रहा है, बल्कि सभी  
 उस तक पहुँचा भी नहीं है।

साक्षात्पन केवल धर्म का साक्षात्पन और सामुदायिक पूजा  
 द्वारा—सार्विक पूजापति के जाने समुदाय द्वारा—दी जानेवाली

अधिक है—इसलिए पूजापति, यदि भी इसी जोषक के  
 संलग्न होता है।—मानव की टिप्पणी। २४







मध्य तथा यह कि यह निरीक्षणार्थ सभी दर्जा  
धर्मनिरपेक्ष ही होता है।

यह निरीक्षणार्थ का मानचित्रण धारण में केवल त्रि-  
निक, धर्मनिरपेक्ष है, धर्म कम्प्यूटेशन का प्रयोग  
एकदम सामाजिक धर्म मोक्ष कार्य की धर्म उन्मुख है।

हम देख चुके हैं कि किस प्रकार सामाजिक धर्म  
निर्माण निम्नी संपत्ति की रचना कर लेने पर मनुष्य धर्म  
को-धर्मनिरपेक्ष धर्म दूसरे मनुष्य को-उन्मुख करता है।  
किस प्रकार उन्मुखी रचना को प्रत्यक्ष धर्मनिरपेक्ष  
के कारण विषय भाषा ही दूसरे धर्मनिरपेक्ष के लिए  
मनुष्य धर्मनिरपेक्ष, दूसरे धर्मनिरपेक्ष का धर्मनिरपेक्ष धर्म  
लिए वह धर्मनिरपेक्ष भी है। लेकिन इस प्रकार धर्म  
धर्म विषयों के नाम मनुष्य, दोनों धर्म का परिणाम  
प्रमाण बिंदु भी है (धर्म ठीक इसी तथ्य में कि उ  
प्रमाण बिंदु होता आवश्यक है, निम्नी संपत्ति की ऐतिहासिक  
धर्मनिरपेक्षता निहित है)। इस प्रकार सामाजिक स्वयं  
धर्म का सामाजिक स्वयं है जिस प्रकार समाज स्वयं मनु  
को मनुष्य के रूप में पैदा करता है, उसी प्रकार हम  
उसके द्वारा पैदा किया जाता है। कार्यकलाप में  
उपयोग, दोनों धर्मनिरपेक्ष तथा धर्मनिरपेक्ष में सामाजिक  
हैं - सामाजिक \* कार्यकलाप और सामाजिक उपयोग। धर्म  
का मानव धर्म केवल सामाजिक मनुष्य के लिए ही होता  
है, क्योंकि केवल तब ही प्रकृति का उसके लिए मनुष्य  
के साथ धर्मनिरपेक्ष के नाम - दूसरे के लिए उसके धर्मनिरपेक्ष और

\* पांडुलिपि में यह शब्द गायब हुआ है। - स०



केवल काबिज होने के, रखने के धर्मों में नहीं रहता  
 जानी चाहिये। मनुष्य अपने सर्वममावेगी तार का सर्वममावे  
 दम में, करने का मतलब यह कि संपूर्ण मनुष्य को व  
 विनियोजन करना है। जगत् के माध्य उनमें मानव ह  
 में में प्रत्येक - दृष्टि, ध्वज, घ्राण, स्वाद, स्पर्श, विचार  
 प्रेरण, अनुभव, कामना, कार्य, प्रेम-संश्लेष में, उन  
 वैयक्तिक मत्व के सभी धर्म, उन धर्मों की ही शक्ति, ई  
 अपने रूप में प्रत्यक्ष सामाजिक हैं, ॥ VII ॥ अपने वस्तु  
 अभिविवक्षा में, धर्मवा वस्तु के प्रति अपने अभिविवक्षा में,  
 वस्तु का विनियोजन, मानव वास्तविकता का विनिय  
 हैं। वस्तु के प्रति उनका अभिविवक्षा मानव वास्तविकता  
 की अभिविवक्षा है, यह मानव कार्यकलाप और मन  
 दुःखभोग है, क्योंकि दुःखभोग, मानविक दृष्टि से, मनुष्य  
 का एक प्रकार का आत्म-उपभोग है।  
 निजी संपत्ति ने हमें इतना जड़मति और एकांगी बन  
 दिया है कि कोई वस्तु सिर्फ तभी हमारी होती है कि ज  
 वह हमारे पास हो - जब वह हमारे लिए पूजी की तरह  
 अस्तित्वमान हो, धर्मवा जब वह प्रत्यक्ष कब्जे में हो  
 छापी, पी, पहनी, भावास्तित, भावि होती है - संश्लेष में  
 जब वह हमारे द्वारा प्रयुक्त की जाती है। यद्यपि नि  
 संपत्ति स्वयं दूसरी और कब्जे के इन सभी प्रत्यक्ष निद्रिकरणों  
 केवल जीवन साधनों के नाते ही कल्पना करती है, और  
 साधनों के नाते जिस जीवन के काम आते हैं, वह निजी  
 संपत्ति का जीवन - धर्म और पूजी में परिवर्तन - ही है।

इस कारण इसमें इतनी ही विविधता है, जितनी मानव  
 और क्रियाकलापों के निर्धारणों में। - मार्क्स की टिप्पणी।

इसलिए इन सभी भारोरिक तथा मानसिक संवेदनो के  
 ध्यान पर इन सभी संवेदनो का विभुद्ध वियोजन, रखने का  
 विवेकन भा गया है। मानव सत्त्व को इस पूर्ण दग्दिता मे  
 ररिणत किया जाना जरुरी था कि जिसमे वह अपनी भारोरिक  
 पिदा बाह्य जगल को दे सके। ( "रखने" के सवर्ग के बारे  
 में *Einundzwanzig Bogen* मे हेस्त\* का मेख देखें। )

भत निजी सपत्ति का उन्मूलन समस्त मानव संवेदनी  
 या गुणो की पूर्ण मुक्ति है, किन्तु यह मुक्ति ठीक इस  
 कारण ही है कि ये संवेदन तथा गुण वस्तुपरक तथा धात्मगत  
 रूप मे मानविक बन गये हैं। नेत्र मानव नेत्र बन गया है,  
 ऐसे उनकी वस्तु एक सामाजिक, मानव वस्तु—मनुष्य द्वारा  
 मनुष्य के लिए निर्मित वस्तु—बन गयी है। भत संवेदन  
 अपने व्यवहार मे प्रत्यक्षत सिद्धांतकार बन गये हैं। वे  
 अपने को वस्तु के साथ वस्तु की धानिर संबद्ध करते हैं,  
 किन्तु स्वयं वस्तु अपने साथ और मनुष्य\*\* के साथ एक  
 वस्तुपरक मानव संबंध है, तथा सत्प्रतिबिम्बान्। कलस आव-  
 श्यकता प्रथवा उपयोग ने अपनी सहभावी प्रकृति को गया  
 दिया है, और प्रकृति ने मानव उपयोग बनकर अपनी मात्र  
 उपयोग द्वारा उपयोगिता को गया दिया है।

इसी तरह से भव्य लोगो के संवेदन और उपयोग मेरी  
 अपनी उपलब्धि बन गये हैं। इसलिए इन प्रत्यक्ष भवो के

\* Moses Hess, *Philosophie der Tat.* — ६०

\*\* व्यवहार मे मैं अपने को किसी वस्तु से मानविक ढग  
 से सिर्फं तब ही संबद्ध कर सकता हू कि अगर वस्तु स्वयं  
 को मनुष्य के साथ मानविक ढग से संबद्ध करती है।—  
 मार्क्स की टिप्पणी।

समाज सामाजिक धर्म समाज के रूप में निर्मित हो है।  
इस प्रकार, उदाहरण के लिए, धर्म भाषा, धर्म के द्वारा  
समाज में क्रियात्मक धर्म धर्म जीवन को धर्मधर्म धर्म  
के लिए एक धर्म धर्म जीवन को धर्मधर्म धर्म  
का रूप बन गया है।

यह प्रत्यक्ष है कि मानव नेत्र चींटों का धारित मानवोन्मत्त नेत्र से किन्तु इग से, मानव का धारित नेत्र से भिन्न इग से, उपयोग करता है, आदि।

हम देख चुके हैं कि मनुष्य अपने आपको भाली वस्तु में केवल तब ही महो गणना है कि जब वस्तु उसके लिए सामाजिक वस्तु अथवा वस्तुत्पन्न मनुष्य बन जाती है। यह हमें तब ही समझ है कि जब वस्तु उसके लिए एक सामाजिक वस्तु, यह स्वयं अपने लिए एक सामाजिक सत्त्व बन गया है, जैसे समाज उसके लिए इस वस्तु में एक मूल्य बन जाता है।

इसलिए एक ओर तो यह निकल सब ही होता है कि वह वस्तु जगत समाज में आदमी के लिए सर्वत्र मनुष्य की सात्विक शक्तियों का समार—मानव वास्तविकता, और इस कारण स्वयं उसकी सात्विक शक्तियों की वास्तविकता—बन जाता है कि सभी वस्तुएँ उनके लिए स्वयं का वस्तुत्तर बन जाती हैं, ऐसी वस्तुएँ बन जाती हैं कि जो उसकी वैयक्तिकता की अभिपुष्टि तथा सिद्धि करती हैं, उसकी वस्तु बन जाती हैं अर्थात् मनुष्य स्वयं वस्तु बन जाता है। वे जिस ढंग से उसकी बनती है, यह वस्तुओं के स्वरूप पर और उनके अनुरूप सात्विक शक्ति के स्वरूप पर निर्भर करता है; कारण कि यह ठीक इस तथ्य का निर्धारक स्वरूप ही है कि जो अभिरोपण के विशेष, वास्तविक रूप को गड़ता है। जैसा कि कोई वस्तु उससे निम्न प्रतीत होती

है, जो वह कान को प्रतीत होती है, और नेत्र की वस्तु कान की वस्तु में भिन्न कोई वस्तु है। प्रत्येक तात्त्विक शक्ति का विशिष्ट स्वरूप ही यथार्थतः उसका विशिष्ट सार, और इसलिए उसके वस्तुकरण का, उसके वस्तुगत रूप में वास्तविक, सजीव सत्त्व का विशिष्ट रूप भी है। इस प्रकार मनुष्य वस्तु जगत में केवल विचारणा की क्रिया में ही नहीं, [VIII] बल्कि अपने सभी संवेदनों के साथ अभिपुष्ट होता है।

दूसरी ओर, साइये इसे अपने आत्मगत पहलू में देखें। चूँकि केवल संगीत ही मनुष्य में संगीत संवेदन को जगाता है, और चूँकि सुंदरतम संगीत भी संगीतविरत कान के लिए कोई शानी नहीं रखता—उसके लिए वस्तु [नहीं] है, क्योंकि मेरी वस्तु मेरी तात्त्विक शक्तियों में से एक का पुष्टीकरण ही हो सकती है, इसलिए वह मेरे लिए सिर्फ़ वही तक अस्तित्वमान हो सकती है कि जहाँ तक मेरी तात्त्विक शक्ति अपने लिए एक आत्मगत क्षमता के रूप में अस्तित्वमान है; क्योंकि मेरे लिए किसी वस्तु का अर्थ सिर्फ़ वही तक जाता है कि जहाँ तक मेरा संवेदन जाता है (सिर्फ़ उस वस्तु के अनुरूप संवेदन के लिए ही अर्थ रखता है)—इस कारण सामाजिक मनुष्य के संवेदन सामाजिक मनुष्य के संवेदनों से भिन्न होते हैं। केवल मनुष्य के तात्त्विक सत्त्व की वस्तु रूप में उन्मीलित समृद्धि के जरिये ही आत्मगत मानव संवेदनशक्ति की समृद्धि (संगीत की परछा, रूप की सुंदरता का अनुसंधान—संश्लेष में, मानव परिपोषण में समर्थ संवेदन, अपने ही मनुष्य की तात्त्विक शक्तियों की तरह अभिपोषित करनेवाले संवेदन) को परिष्कृत किया जा अस्तित्व में लाया जा सकता है। कारण कि न केवल

पाँचों संवेदन, बर्तित तथा बर्तित मानविक संवेदन,  
 गिर संवेदन (इच्छा, प्रेम, धादि) मनों में मानव  
 संवेदनो का मानव स्वरूप भी धरने वस्तु की  
 मानवभूत प्रकृति की बर्तित ही धरित में धरने  
 संवेदनो का निर्माण समार के धार ता के मरण  
 का कार्य है। भोड़ी व्यावहारिक व्यावहारिकता से धर  
 का केवल सीमित धर ही होता है। धरने के निर  
 धरितमान है, वह धरने का मानविक रूप नहीं है, व  
 सिर्फ धरने के नामे उत्तरा धरित धरित ही है। व  
 सबसे धरित रूप में भी हो सकता है और वह धर  
 धरित होगा कि यह धरित जिस धर में धरने की  
 धरित से धरित है। धरित से धर, निर्धनताधर धरने  
 धरितो का व्यापारो धरित के सिर्फ धरितिक मूय ही  
 हो धरित है, न कि धरित की सुधरता तथा धरित स्व  
 को उसे कोई धरितिक बोध नहीं होता। इस धर  
 धरित के संवेदन को मानविक बनाने के लिए धर  
 तथा नैतिकता तथा की समस्त धरने के धरित मानव संवे  
 उत्तरा करने के लिए मानव धर का धरने सैधनिक तथा  
 व्यावहारिक, दोनों ही धरने में वस्तुकरण होना धरित  
 है।

जिस प्रकार उदीयमान समाज निजी संघर्ष की, उत्तरी  
 धरित तथा निर्धनता की—उत्तरी धरित तथा धरित  
 धरित और निर्धनता की—धरित के धरिते इस धरित ने  
 धरित सारी धरितो को धरिते धरित है, उत्तरी प्रकार धरित  
 धरित धरिते धरिते धरिते धरित के रूप में धरित को धरने  
 व की इस समस्त धरित में उत्तरा धरित है, समस्त





क्योंकि अब तक ममत्त्व मानव क्रियाकलाप स्वयं से निर्मित  
श्रम - धर्मात् उद्योग - क्रियाकलाप ही रहा है) में प्रतीति  
इन्द्रियमय, इतर, उपयोगी वस्तुओं के रूप में, विवेक  
के रूप में, मनुष्य की वस्तुवत् तात्त्विक दृष्टिगत है।

यह मनोविज्ञान विज्ञान, मर्यादीत और वास्तविक विज्ञान  
नहीं बन सकना, जिसके लिए यह पुस्तक, अपने अन्त  
तथा अभिगम्य रूप में विद्यमान इतिहास का घन एक  
विनाश बना रहता है। मनुष्य ऐसे विज्ञान के बारे में है  
सोचे भी क्या, जो अटकापूर्वक मानव श्रम के इन दो  
भाग से असंपूर्ण रहता है और जो स्वयं अपनी पूर्णता  
को अनुभव नहीं करता है, जब कि उनके सामने उद्घाटित  
मानव प्रयास की इसनी संपदा का धर्म उसके लिए इतने  
अधिक कुछ भी नहीं है, जिसे समस्त: एक शब्द - "इतर",  
"भौती वस्तु" में व्यक्त किया जा सकता है?

प्राकृतिक विज्ञानों ने अपना क्रियाकलाप उत्पन्न कर दिया  
है और निरवधारित सामग्री को संचित कर लिया है। लेकिन  
उनके लिए उतना ही इतर बना रहा है, जितना वे  
लिये लिए हैं। उनकी क्षणिक एकता बस एक काल्पनिक  
निति ही थी। इच्छा तो थी, पर समता का अभाव था।  
यह इतिहासशास्त्र प्राकृतिक विज्ञान की तरफ कभी-कभी  
प्रबोधन, उपयोगिता और कुछ विशेष महत्वपूर्ण खोजों  
एक बार के नाने, ध्यान देता है। लेकिन प्राकृतिक  
विज्ञान ने उद्योग के माध्यम से मानव जीवन को व्यावहारिक  
में बड़ी अधिक मात्रा तथा रूपान्तरित किया है, और  
मनुष्य को निष्पन्न किया है, यद्यपि अपना तात्त्विक  
मनुष्य के अमानवीकरण को बढ़ावा देना ही रहा  
उद्योग प्रवृत्ति का और इसलिए प्राकृतिक विज्ञान का

मनुष्य के साथ वास्तविक, ऐतिहासिक संबंध है। यह अगर उद्योग की मनुष्य की तात्त्विक शक्तियों के बहिरंग प्रकटीकरण के रूप में कल्पना की जाती है, तो हमें प्रकृति के मानव सार अथवा मनुष्य के प्राकृतिक सार की समझ भी प्राप्त हो जाती है। परिणामतः प्राकृतिक विज्ञान अपनी समुद्र-स्पर्श सीमा—अथवा जो कहें नि अपनी प्राध्यात्मिक—प्रवृत्ति को गढ़ा देगा और मानव विज्ञान का आधार बन जायेगा, जैसे वह अब भी—अद्यपि विधोचित रूप में—वास्तविक मानव जीवन का आधार बन चुका है, और जीवन के लिए एक आधार की और विज्ञान के लिए चिन्तन आधार की कल्पना करना निस्संदेह झूठ की कल्पना करना है। मानव इतिहास में—मानव समाज के उत्पत्ति काल में—जो प्रकृति विकसित होती है, वह मनुष्य की वास्तविक प्रकृति है, वह उद्योग के जरिये जो प्रकृति विकसित होती है, वह—बाह्य विधोचित रूप में ही सही—वास्तविक मूलस्थायी प्रकृति है।

इंद्रिय-ग्रन्थ (इन्ड्रिय-ग्रन्थ) को समस्त विज्ञान का आधार होना चाहिये। विज्ञान निर्णय नव ही वास्तविक विज्ञान है कि जब वह इंद्रियग्रन्थ के अन्तर्गत और इंद्रियग्रन्थ आवश्यकता के दृष्टि से रूप में इंद्रिय-ग्रन्थ में समाया है—अर्थात् निर्णय यह कि जब विज्ञान प्रकृति में प्रारम्भ करना है। सात इतिहास "मनुष्य" को इंद्रियग्रन्थ के अन्तर्गत का विषय बनने के लिए तैयार और विकसित करने और 'मनुष्य के नाम 'मनुष्य' की अपेक्षाओं को उनकी आवश्यकताओं में परिणत करने का इतिहास है। इतिहास स्वयं प्राकृतिक इतिहास का—मनुष्य में विकसित होती प्रकृति का—एक वास्तविक अंग है। प्राकृतिक विज्ञान समय के साथ अपने आधारों मनुष्य के विज्ञान में एकीभूत कर लेगा, जैसे मनुष्य का विज्ञान

मानने चापको प्राकृतिक विज्ञान में एकीभूत कर देना एक विज्ञान बन जायेगा।

४ X ) मनुष्य प्राकृतिक विज्ञान का प्रत्यक्ष विषय है क्योंकि मनुष्य के लिए प्रत्यक्ष, इंद्रियगम्य प्रकृति-  
लिए इंद्रियगम्य रूप में विद्यमान दूसरे प्राणी से कुछ  
वस्तुन - प्रत्यक्ष, मानव इंद्रियगम्यता है (ये मानव  
अभिव्यक्तियाँ हैं)। वस्तुन स्वयं उसके इंद्रिय-प्रत्यक्ष  
अस्तित्व पहले दूसरे प्राणी के जरिये स्वयं के लिए  
इंद्रियगम्यता के रूप में होता है। तैरिन मनुष्य के वि  
का प्रत्यक्ष विषय प्रकृति है. मनुष्य का पर्याय विषय  
मनुष्य - प्रकृति, इंद्रियगम्यता है; और विशिष्ट :  
इंद्रियगम्य तात्त्विक शक्तियाँ अपनी आत्म-अवधारण  
सामान्यरूपेण प्राकृतिक जगत के विज्ञान में हो पा  
हैं, जैसे वे अपनी वस्तुहय सिद्धि केवल प्राकृतिक वस्तु  
ही पा सकती हैं। स्वयं चिन्तन के तत्त्व - चिन्तन की  
अभिव्यक्ति के तत्त्व - भाषा - की इंद्रियगम्य प्रकृति  
प्रकृति की सामाजिक वास्तविकता और मानव प्रा  
विज्ञान, यद्यपि मनुष्य का प्राकृतिक विज्ञान समानार्थक प

< यह देखा जायेगा कि किस तरह से राजनीतिक प्रवे  
शास्त्र के घन और निर्धनता के स्थान पर संकलन मनुष्य और  
संकलन मानव आवश्यकता का जाति है। संकलन मानव साथ  
ही जीवन की मानव अभिव्यक्तियों की ममता की आवश्यक  
ता से उत्पन्न मनुष्य भी है - ऐसा मनुष्य, जिसमें स्वयं अपनी  
सिद्धि एक आंतरिक आवश्यकता के रूप में, अभाव के रूप  
में प्रकटमान होती है। केवल मनुष्य की संकलन ही नहीं,  
इसी प्रकार निर्धनता भी - समाजवाद के अनर्गल -  
काल दाता में मानव और इसलिए सामाजिक महत्व प्राप्त

करती है। निर्धनता वह निष्क्रिय धन है, जो मनुष्य को सबसे बड़े धन—दूसरे मनुष्य—की आवश्यकता का अनुभव करवाता है। मुझ में वस्तुस्थिति का प्राधान्य, मेरी जीवन क्रिया का इन्द्रियगत प्रस्फोट आवेश है, जो उस प्रकार वहाँ मेरे सत्य की सचियता बन जाता है। >

(५) कोई भी सत्य अपने को केवल तब ही स्वतंत्र समझता है कि जब वह स्वयं अपने पैरो पर खड़ा हो, और वह स्वयं अपने पैरो पर निर्भर तब खड़ा होता है कि जब उसका अस्तित्व स्वयं की बदीनत होता है। जो आदमी हमारे की मेहरबानी की बदीनत जीता है, वह स्वयं को पराश्रित समझता है। लेकिन मैं पूरी तरह से दूसरे की मेहरबानी पर ही जीता हूँ कि अगर मैं न केवल अपने जीवन के भरण-पोषण के लिए ही उसका श्रुर्णा हूँ, बल्कि अगर उसने, हमके भलाया, मेरे जीवन का सुजन भी किया है—अगर वह मेरे जीवन का स्रोत है। जब वह स्वयं मेरी सृष्टि नहीं है, तो मेरे जीवन का इस तरह का स्रोत अनिवार्यतः उसके बाहर है। धन सृष्टि एक ऐसा विचार है, जिसे जन मानस से हटाना बहुत कठिन है। यह तथ्य उसके लिए अवोधगम्य है कि प्रकृति और मनुष्य का अस्तित्व श्रुद अपनी खानिर है, क्योंकि वह व्यावहारिक जीवन में गोबर हर बात का खटन करता है।

पृथ्वी की सृष्टि के विचार को भूज्ञान से—अर्थात् उस विज्ञान से, जो पृथ्वी की उत्पत्ति, पृथ्वी के विहास को एक प्रक्रिया, एक स्वजनन की तरह प्रस्तुत करता है—खरदस्त चोट मिली है। *Generatio equivoca* सृष्टि सिद्धांत का एक मात्र व्यावहारिक खडन है।<sup>२२</sup>

यदि हमेंसे व्यक्ति को वह कहना निस्संदेह आसान है,



चाहते हो कि मैं तुम्हारे लिए उन्हें अस्तित्वमान मिद्ध करूँ।  
 धन मैं तुमसे कहता ॥ अपने अपाकर्षण को त्याग दो और  
 तुम अपने प्रश्न को भी त्याग दोगे। या अगर तुम अपने  
 अपाकर्षण पर जमे रहना चाहते हो, तो मगन बनो, और  
 अगर तुम मनुष्य और प्रकृति को अस्तित्वमान समझते हो,  
 । XI । तो अपने को भी अस्तित्वमान समझो, क्योंकि तुम  
 भी निश्चय ही प्रकृति और मनुष्य हो। मोक्षो मन, मुझसे  
 पूछो मन, क्योंकि जैसे ही तुम सोचने और कृत्ये हो, तुम्हारे  
 प्रकृति और मनुष्य के अस्तित्व में अपाकर्षण का कोई प्रभाव  
 नहीं रहता। या क्या तुम इतने सहजवादी हो कि तुम सभी  
 कुछ की अस्तित्वमान की तरह कल्पना करना चाहते हो  
 और फिर भी चाहते हो कि तुम्हारा अस्तित्व बना रहे ?

तुम जवाब दे सकते हो मैं प्रकृति, प्राणि की अवस्था  
 को अभिमान नहीं करना चाहता। मैं तुमसे उसके उत्पत्ति  
 कम के बारे में पूछ रहा हूँ, जैसे मैं भारतीय में अम्पियो  
 की रचना, प्राणि के बारे में पूछता हूँ।

लेकिन चूँकि समाजवादी धारणा के लिए समस्त तथा-  
 कथित विश्व इतिहास मानव धर्म के जरिये मनुष्य की सर्वना  
 के सिवा और कुछ भी नहीं है, मनुष्य के लिए प्रकृति के  
 उदय के सिवा और कुछ भी नहीं है, इसलिए उसके पास  
 स्वयं अपने जरिये अपने जन्म का, अपने उत्पत्ति कम का  
 प्रकट, अवश्यनीय प्रमाण है। चूँकि मनुष्य और प्रकृति का  
 वास्तविक अस्तित्व व्यवहार में, संवेद अनुभूति के जरिये,  
 प्रत्यक्ष हो गया है, चूँकि मनुष्य इस प्रकार मनुष्य के लिए  
 प्रकृति के सत्व की तरह प्रत्यक्ष हो गया है और प्रकृति  
 मनुष्य के लिए मनुष्य के सत्व की तरह प्रत्यक्ष हो गयी है,  
 १ एक-दूसरे के बारे में, प्रकृति और मनुष्य के

उपर मात्र के बारे में प्रश्न—जिम प्रश्न में प्रतीति के मनुष्य की सामाजिकता को स्वीकारना अनिवार्य है। व्यवहार में व्यवस्था हो गया है। इस सामाजिक परकीकरण के जाने समीपवर्षाद का घर कोई धर्म नहीं जाना है, क्योंकि समीपवर्षाद ईश्वर का नियम है, ईश्वर का नियम के अन्तिम मनुष्य के अन्तिम को प्रतिबिम्बित है, लेकिन समाजवाद के जाने समाजवाद की सब इस तरह मध्यस्थता की कोई आवश्यकता नहीं रहती। यह बात हम में मनुष्य और प्रकृति की सिद्धांततः तथा व्यवहार इष्टियगम्य चेतना के साथ प्रारम्भ करता है। समाजवाद की सकारात्मक साम्यचेतना है, जो सब धर्म के उद्भव द्वारा व्यवहृत नहीं होती, जिस प्रकार वास्तविक लोग मनुष्य की सकारात्मक वास्तविकता है, जो सब निजी स्वार्थ के उद्भूतन द्वारा, कम्युनिज्म द्वारा व्यवहृत नहीं होती। कम्युनिज्म नियम के नियम की स्थिति है, और इनके मानव बुद्धि तथा पुनर्स्थापना की प्रक्रिया में ऐतिहासिक विकास को समझी समस्या के लिए आवश्यक वास्तविकता है। कम्युनिज्म आसन्न भविष्य का आवश्यक रूप तथा नया रूपक सिद्धांत है, किन्तु अपने में कम्युनिज्म मानव विकास का लक्ष्य, मानव समाज का रूप, नहीं है।<sup>40</sup> | XI |

[निजी संपत्ति के शासन के अंतर्गत मानव अपेक्षाएं तथा थम विभाजन]

। XIV ।<sup>41</sup> (७) हम देख चुके हैं कि समाजवाद के अंतर्गत मानव आवश्यकताओं की विपुलता जैसा महत्त्व प्राप्त कर लेती है, और इसलिए कोई नयी उत्पादन विधि और













निम्न राजनीतिक धर्मशास्त्र, धन का यह विज्ञान, यह  
 परिणाम का, समर्थ का, बचन का विज्ञान भी है—यह  
 यह सम्पूर्ण उमर इस रूप बना जाना है कि मनुष्य को इस  
 तथा धनका आर्थिक सम्पत्ति को व्यवस्थित करने में  
 विप्लवपूर्ण करने की सीख दे मल्लारी उद्योग का भी  
 विज्ञान माय ही संपत्ति का भी है, और इस  
 सामाजिक धर्म में संपत्ति, कि मनुष्योन्मुख और हमारे  
 किन्तु उत्पादक दाग है। इ १५ मार्ग यह बच्चा  
 है, जो अपनी मजदूरी का १ बचन बैंक में रखा  
 का देना है, और इसने एक १ चांदकार बना एक  
 को खोज निकाला है, जो इ १ चार को मुर्त रंगी  
 है इसे भावुकता में मराबो १ च पर प्रस्तुत निम्न  
 जा चुका है। इस प्रकार राजनीतिक धर्मशास्त्र—धन  
 सामाजिक और विनामश्रित स्वरूप के आवजुद—एक सामाजिक  
 नैतिक विज्ञान, सभी विज्ञानों में सर्वाधिक नैतिक विज्ञान है।  
 आत्मत्याग, जीवन का और समस्त मानव आवश्यकताओं  
 का त्याग ही इसकी मुख्य स्थापना है। तुम जितना ही कम  
 खाते, पीते और कितने खरीदते हो, तुम जितना ही कम  
 धियेटर, नुस्यगाला, मधुशाला जाने हो; तुम जितना ही  
 कम सोचते, धार करते, चितन करते, गाते, चित्रकारी  
 करते, पट्टेबाजी करते हो, आदि, उतना ही अधिक तुम  
 बचाते हो, तुम्हारा धन—तुम्हारी पूँजी—उतना ही बचा  
 हो जाता है, जितने न कीड़े खा सकते हैं और न जग नष्ट  
 कर सकता है। तुम जितना ही कम हो, तुम स्वयं अपने  
 जीवन को जितना ही कम व्यक्त करते हो, तुम्हारे पाम  
 उतना ही अधिक है, यद्यपि तुम्हारा इतरीभूत जीवन उतना  
 ही अधिक है, तुम्हारे वियोजित मत्व का सचय उतना ही

अधिक है। जो भी कुछ ॥ XVI ॥ राजनीतिक अर्थशास्त्री  
 तुम से ज़िदगी में भीर मानवता में नेता है, उसकी वह तुम्हारे  
 लिए द्रव्य में भीर धन में प्रतिस्थापना कर देता है; और  
 वह सब, जो तुम नहीं कर सकते, तुम्हारा द्रव्य कर सकता  
 है। वह खा भीर भी मक्का है, नृत्यनामा और पिघेटर जा  
 सकता है, वह यात्रा कर सकता है, वह कला, ज्ञान,  
 अनीत की निधिया, राजनीतिक अफिर हम्मगन कर सकता  
 है—यह सब वह तुम्हारे लिए हम्मगन कर सकता है—यह  
 वह सब खरीद सकता है वह वामनिक अर्थवर्षा है।  
 धनवता यह सब होने हुए भी वह अपने को पैदा करने,  
 अपने को खरीदने के अभाव और कुछ नहीं करना चाहता,  
 क्योंकि अफिर और अभी कुछ उमका चाकर है, और  
 जब मेरे पास मालिक है, तो मेरे पास चाकर भी है और  
 मुझे उसके चाकर की जरूरत नहीं। इसलिए सारे भाषावेजो  
 और मारे जियाकमान को लोभ में डूबा जाना चाहिए।  
 मजदूर के पास बिल्कुल इतना ही होना चाहिये कि वह जीना  
 चाहे, और उसे जीना बिल्कुल इसलिए चाहना चाहिये कि  
 इतना उसके पास हो सके। >

यह सही है कि अब राजनीतिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र में  
 एक विवाद पैदा हो जाता है। एक पक्ष (लॉर्डरडेन,  
 माल्थस, आदि) विनाशिता की अनुमति करता है और  
 निगम्य की कोसता है। दूसरा (सेव, रिक्वार्टो, आदि)  
 निगम्य की अनुमति करता है और विनाशिता की कोसता  
 है। लेकिन पूर्वोक्त स्वीकार करता है कि वह विनाशिता  
 इसलिए चाहता है कि अब (अर्थात् पूर्ण निगम्य) उत्पन्न  
 कर सके; और अतोक्त स्वीकार करता है कि वह निगम्य  
 की धन (अर्थात् विनाशिता) उत्पन्न करने के लिए अनुमति

१। महिरहेन-साध्यम प्राग की यह  
रहेने लोभ को ही अनियों के उभ  
ना धार्मिक, धीर अण्व्यय को म  
तापन के रूप में प्रस्तुत करने हुए  
१। छहन करती है। इन इमों

सभीरना धीर ध्योरे के साथ यह  
लो होकर मैं अपनी संपत्ति को ब  
१। लेव-रिवाहों द्वारा वा यह न

कि यह वस्तुन शक धीर लोभ  
वा निर्धारण करने है। यह "वा  
ले भूम जानी है; यह भूल जानी  
कोई उत्पादन न होगा, यह भूल

के परिणामस्वरूप उत्पादन तिकै  
समय ही हो सकता है। यह इम  
के इसके विचारों के अनुसार विष  
योग द्वारा निर्धारित होता है म  
ऐसन द्वारा होता है। यह केवल  
ही उत्पादित हुआ देखना चाहती है,  
के बहुत सी उपयोगी वस्तुओं का  
भी आवादी पैदा करता है। दोनों  
- अण्व्यय और मितव्यय, विनाशित  
निर्धनता बराबर है।

पर लुप्त मितव्ययी होना चाहते हैं  
रा नष्ट नहीं हुआ चाहते हो, तो  
न्य सवेदनों के तोषण को ह  
वे, जैसे भोजन, आदि पर अपने

त, सारे विश्वास, आदि में सहभागिता में भी दूर रखना हिये।

<तुम्हें हर उस चीज को, जो तुम्हारी है, विक्रेय, फिर उपयोगी बना देना चाहिये। अगर मैं राजनीतिक अर्थ-शास्त्री में कुछ अगर मैं अपने शरीर को विक्री के लिए करके, उसे किसी अन्य की सामग्री को समर्पित करके या बगूल करता हूँ, तो क्या मैं अर्थशास्त्र के नियमों का पालन करता हूँ? (काम में बाग़खाना मजदूर अपनी कीर्तियों और बेटियों की बेग्यावृत्ति को काम का अनिश्चित घटा होने हैं, जो नाशिक अर्थों में नहीं है।) - या अगर मैं अपना दोस्त मोरकोवाला को बेच देता हूँ, तो क्या मैं राजनीतिक अर्थशास्त्र के अनुसार नहीं चल रहा हूँ? (और पहली, आदि में व्यापार के रूप में लोगों की प्रत्यक्ष बिनी भी सम्म देना में होती है।) - तो राजनीतिक अर्थशास्त्री ही बचाव देता है। तुम मेरे नियमों का अतिव्रमण नहीं करते; लेकिन देखो कि मन्त्रालय नीतिशास्त्र और मन्त्रालय में इसके बारे में क्या कहते हैं। मेरे राजनीतिक अर्थशास्त्रीय नीतिशास्त्र और अर्थ के पास तुम्हें उपाहाना देने को कुछ नहीं है, लेकिन - लेकिन भला मैं अब किसका विश्वास करूँ, राजनीतिक अर्थशास्त्र का या नीतिशास्त्र का? - राजनीतिक अर्थशास्त्र की नीतिकता अविश्वस्य, काम, धनव्यय, समय है। लेकिन राजनीतिक अर्थशास्त्र मेरी आवश्यकताओं की तुष्टि का आश्वासन देता है। - नीतिकता का राजनीतिक अर्थशास्त्र सद्बिबेक, सदाचार आदि का आचरण है, लेकिन अगर मैं जियू ही नहीं, तो भला मैं सदाचारपूर्वक कैसे जी सकता हूँ? और अगर मैं कुछ जानता ही नहीं, तो भला मुझमें सद्बिबेक कैसे हो सकता है? यह विद्योवन की प्रवृत्ति





नैतिक नियमों को अपने ही हथ से ध्वस्त करना है।

<भित्तियारों को राजनीतिक अर्थशास्त्र के मिटाने के लिए उनके जनसंख्या सिद्धांत में सबसे प्रतिभाशाली हथ से देखना पड़ा जाता है। लोग बहुत अधिक हैं। मनुष्य का अस्तित्व एक शुद्ध शिनामिल है, और अगर मजदूर "नीतिपरक" हैं, तो वह बच्चे पैदा करने में कसूरमी करेगा। (भित्तियारों की मार्क्सवादी भगवता करने का, जो अपने यौन-संबंधों में अपने को समझी मिट्ट कर रहे हैं, और उनकी मार्क्सवादी भर्त्सना करने का सुझाव देने हैं, जो विवाह की गैरी मनुवादकता के विरुद्ध आचरण करने हैं। \* क्या यह शिनामिल, तपस्वियों की शिक्षा नहीं है?) लोगों का पैदा होना मार्क्सवादी दैव्य प्रतीत होता है।>

उत्पादन का जो अर्थ धनियों के सदर्थ में है, वह निर्धना के लिए उसका जो अर्थ है, उसमें प्रकट हो जाता है। ऊपर की तरफ देखें, तो अभिव्यक्ति हमेशा परिष्कृत, प्रच्छन्न, सम्पद-बाह्य आश्रय है, नीचे की तरफ देखें, तो वह अपरिष्कृत, नीची और निष्कपट-असली चीज है। मजदूर की अपरिष्कृत आवश्यकता लाभ का अमीरो की परिष्कृत आवश्यकता की बलिवल नहीं उठा खोल है। मरने के तात्पर्य पर उनके मानिकों को महती की गुप्तता में अधिक शक्ति करवाते हैं, बहने का मतलब यह कि भव्य मानिक के सदर्थ में वे अधिक बड़ी संख्या, और इन प्रकार (राज-

\* James Mill, *Elements of Political Economy*, London, 1821, p. 44 (मार्क्स ने फ्रांसीसी संस्करण, *Éléments d'économie politique*, Trad. par J. T. P. Paris, 1823, p. 50, से उद्धरण लिया है।)

[illegible]

धारा १५५ अन्वये सम्पुनरित्त हो धारने मारन के लिये निषेध का निषेध, निजी मारन के निषेध की धारन के उचित मानन मात्र का विनियोजन कर - धारी सम्पुनरित्त, मरन उन्मान मरिनि मरी, मरिनि इनके विपरीत निजी मरिनि धारा उन्मान मरिनि [ ]\*। इमलिए बुकि उमरे मर मनुष्य के जीवन का सम्पुनरित्त विनियोजन बना रहना है और जिनका भी कोई उमरे मर मे इमी मर मे मरने हो, उनका ही और भी अधिक बना रहना है, धन इमारी [१५५ विनियोजन के निषेध की] मिडि केवल सम्पुनरित्त साकर ही की जा सकती है।

\*यहाँ पाठ्यलिपि के पन्ने का निचला बाया कोना कटी हुआ है, जिससे इस पृष्ठ की पंक्तियों को पढ़ पाना, उनमें तार्किक विद्यना और उनका धर्म निगान पाना सम्भव है। — स ०

निजी संपत्ति के विचार का उन्मूलन करने के लिए कम्यु-  
निज का विचार पूर्णतः पर्याप्त है। वास्तविक निजी संपत्ति  
उन्मूलन करने के लिए वास्तविक कम्युनिस्ट कार्य प्राव-  
क है। इतिहास स्वयं इस मजिल पर ले जायेगा, और  
गति, जिसे सिद्धांत रूप में हम पहले ही एक स्वसंति-  
मी गति को तरङ्ग जानने हैं, वास्तव में एक बहुत ही  
टहन और दीर्घकालिक प्रक्रिया होगी। लेकिन हमें इसे एक  
वैज्ञानिक प्रगति मानना चाहिये कि हमने प्रारम्भ में ही इस  
ऐतिहासिक गति के मौलिक स्वरूप और सत्य की चेतना की—  
एक ऐसी चेतना की, जो उनके भी जाने जानी है—प्राप्त  
कर लिया है।

जब कम्युनिस्ट सिस्वी भाषण में सहकार करते हैं, तो  
जब वह पड़ता साम्य विज्ञान, प्रचार, मादि होता है। लेकिन  
एक ही, इस सहकार के परिणामस्वरूप, वे एक नयी  
आवश्यकता—समाज की आवश्यकता—प्राप्त कर लेते हैं,  
और जो साधन की तरह प्रकट होगा है, वह साम्य बन  
जाता है। जब भी साम्यवादी समाजवादी मजदूर एक साथ  
मिलते हैं, इस व्यावहारिक प्रक्रिया में सबसे श्रेष्ठ परिणाम  
उत्पन्न होने में आते हैं। धूम्रपान, मुरापान, खाना, मादि जैसी  
जिन्हें जब संपर्क साधन मध्यम उन्हें एक साथ लाने के साधन  
ही है। साहचर्य, मगत और बातचीत, जिसका साम्य  
साहचर्य ही है, उनके लिए काफी है, मनुष्य का भाईचारा  
उनके लिए कोरा मुहावरा नहीं है, बल्कि जीवन की वास्त-  
विकता है और उनके अन्तर्-मोहित शरीरों से हम पर मनुष्य  
की महानता की भाषा निकली होती है।

॥ XX ॥ जब राजनीतिक मर्यादाएँ यह दावा करना  
है कि मांग और पूर्ति सदा एक दूसरे को अनुमिति कर लेने





गण की तरह जानना है। ऐसे धन के साथ मनुष्य को व्यवहार करना बहुत ही कठिन है, धन-विशेष के कारण लोगों की बिलकूलियों को बनाने लगा जा सकता है, उनके विचारों में बिजनेस करने के रूप में, और धन इस लिए धर्म के रूप में मानने योग्य है कि स्वयं उसका प्रतिफल अनिष्टपूर्ण और अविश्वसनीय, अनुत्पादक उपभोग ही दूसरे धर्म के धर्म की ओर इसलिए उसके निर्वाह की गर्व है। वह मनुष्य की तात्त्विक शक्तियों की मिट्टी को केवल धर्म प्रतिरोध, अपनी सारी और मनको, वैतुषी कल्याणों की मिट्टी की तरह समझता है। दूसरी ओर, यह धन, जो केवल एक साधन के रूप में ही, केवल इस रूप में ही जानता है कि जो सिवा नष्ट किये जाने के और किसी काम के साध्य नहीं है और जो इसलिए साथ-साथ ही दाम और स्वामी, साथ-साथ ही विशालहृदय और नीच, लकी, धूर्त, घमडी, परिष्कृत, सुसस्कृत और अत्युत्पन्नमति भी है—इस धन ने अभी धन को अपने पर एक सर्वथा इतर शक्ति के रूप में अनुभव नहीं किया है इसके विपरीत वह अपने केवल अपनी शक्ति को ही देखता है, और धन [वही] "बलिक सामर्थ्य [उसका प्रतिफल]" तथ्य [है]।

\* पाङ्कलिपि यद्वा सनिष्ठस्तु है । — स०

कोई तीन पक्षिया सत्राप्य हैं । - स०













होती है, इग्नानि यह वही लेन-देन का मुद्राव है कि जो भूतल धर्म विभाजन का कारण बनता है। उदाहरण के लिए, शिरागियों या पशुचारियों के रिस्ते करीबन में कोई गाम धादमी किसी भी धोर धादमी की रनिग्बन ज्यादा मुम्नैदी धोर दशना से तोर हो कमान बनाना है। वह उनका धामर धाने मरिदों से दोरो या मृममाण के बढे विनियम कर नेता है, धोर धागिर वह देखता है कि वह इन तरीने से उम्मे क्यादा कार धोर माम धाज्ज कर नेता है कि जिनका वह खुद मैदान में जावर कर सकता है। इनलिए खुद अपने स्वार्थ की खातिर कमान, धादि का बनाना उनका मुख्य धायें बन जाना है [ . ]।

“विभिन्न लोगों में वैयक्तिक प्रतिभाओं की भिन्नता [ ] धर्म विभाजन का इतना कारण नहीं है, [ . ] जितना परिणाम है। लेन-देन [ ] धोर विनियम करने के मुद्राव के बिना ही धादमी ने अपने लिए जीवन की हर आवश्यकता धोर सुविधा को प्राप्त कर लिया होता [ . ] सभी के पास [ .. ] करने को वही काम हुमा होता, धोर धधे की कोई ऐसी भिन्नता न होती कि धधेली को प्रतिभाओं में कोई बड़ी भिन्नता पैदा कर सकती थी।

“जैसे यह मुकाव ही लोगों में [ ] प्रतिभाओं की भिन्नता पैदा करता है, [ ] वैसे ही यह मुकाव ही इस भिन्नता को उपयोगी बनाता है। उसी जाति के पशुओं के कई संवर्ग [ ] प्रकृति से प्रणि-  
 ना का उससे कहीं अधिक उत्तेजनीय वैशिष्ट्य प्राप्त करते हैं, जिनका प्रया तथा शिक्षा के पूर्व पशुओं में होता लगता है। प्रकृति में दार्शनिक प्रतिभा धोर बुद्धि में अन्वेषण में प्राणा भी इतना भिन्न नहीं, जितना मैट्रिफ़ [वृत्ता चैताउद करने में, धधवा  
 - स्पिनियन से भिन्न होता है, धधवा यह अतीत्य



कमन की शक्ति के प्रभाव के कारण अपने ही हाथों में पूरी तरह से समा देने का कोई इच्छा नहीं प्राप्त हो सकता।...

समाज की उन्नत अवस्था में "इन प्रकार इन आधारों विनिमय द्वारा जाता है और किसी हद तक व्यापारों बन जाता है, और समाज स्वयं निर्मित होकर यह बन जाता है, जो सही मानों के शक्तिमान समाज होता है।" (देखें, देखून दे लेनी [Elements d'idéologie, Paris, 1826, pp 68 and 78] "समाज अन्योन्य विनिमयों की श्रुति है, वास्तव में समाज का समस्त सार समाविष्ट है।") .. पूर्वोक्त पक्षय श्रम विभाजन के माध्यमों से बनाया जाता है तथा तत्प्रतिफल।

यह रही ऐडम स्मिथ की बात।\*

"अगर प्रत्येक परिवार जो कुछ भी वह करता है, वह सब पैदा करे, तो समाज का काम इसके बावजूद चलता रह सकता है कि किसी भी तरह का कोई विनिमय नहीं होता है; आधारभूत हुए बिना विनिमय समाज की हमारी उन्नत अवस्था में अपरिहार्य है। श्रम विभाजन मनुष्य की शक्तियों का पुनर्गठन परिणियोजन है, वह समाज के उत्पादन-उत्पाद शक्ति और उसके सुखों-को बढ़ाता है, किन्तु वह हर व्यक्ति की भ्रष्ट-भ्रष्ट योग्यता को घटाता, बन करता है। विनिमय के बिना उत्पादन नहीं हो सकता।"

\* Adam Smith, *Wealth of Nations*, Book I, chs. II-IV.  
 295 (Garnier, t. I, l. chs II-IV, pp 29-45), अनादिकाल  
 और परिचर्यनों के साथ उद्युत।-म.





मशीनरी के नियोजन में प्रायः यह पाया जाता है कि परिणामों का कुशल विवरण द्वारा, उन सभी क्रियाओं को प्रथम करने के द्वारा, जिनमें किसी भी प्रकार दूसरे की सहायता करवायी जा सकती है। साथ आने के द्वारा बढ़ाया जा सकता है। यदि सामान्यतया कई भिन्न क्रियाओं को उन्हीं तरीकों से दक्षता के साथ नहीं कर सकते, जिनमें वे दक्षता द्वारा कुछ क्रियाओं को करना सीख सकते हैं, इसी प्रकार प्रत्येक आदमी पर इसी जानेवाली क्रियाओं की एक की जितना समय हो, उतना सीमित करना हमें लाभदायी रहता है। अधिकतम लाभ के साथ काम को विभाजित करने और लोगों तथा मशीनों की शक्तियों को वितरित करने के लिए अधिकतम मानने में बड़े पैमाने पर कारबार चलाना, दूसरे शब्दों में, जिसों को बड़ी मात्राओं में उत्पादित करना आवश्यक होता है। यही लाभ बड़ी उद्योगशालाओं को प्रयत्न देता है; जिनमें से अत्यन्त सुविधाजनक स्थावरी पर स्थित कुछ उद्योगशालाएँ प्रायः एक देश की ही नहीं, बल्कि कई देशों को उत्पादित जिस की उन्हें जितनी मात्रा चाहिये, उसकी पूर्ति करती हैं।”

यह मिला कहते हैं।”

लेकिन सारा आधुनिक राजनीतिक धर्मशास्त्र इस बारे में सहमत है कि थम विभाजन और उत्पादन का धन, धन विभाजन और पूँजी समय परस्पर एक दूसरे को निर्धारित करते हैं, ठीक जैसे यह इस बारे में सहमत है कि केवल यह निजी संपत्ति ही सबसे उपयोगी और सर्वाधिक मूल्य





XXXVIII | अम विभाजन तथा विनिमय का विवेचन  
 धिक महत्व का है, क्योंकि ये जाति सक्रियता और जानि-  
 न के नाते मानव क्रियाकलाप तथा सात्विक शक्तियों की  
 अतः वियोजित अभिव्यक्तिवा है।

यह दावा करना कि अम विभाजन और विनिमय निजी  
 त पर आधारित है, यह दावा करने के निवा और  
 नहीं है कि निजी संपत्ति का सार अम है—ऐसा दावा,  
 राजनीतिक धर्मशास्त्री सिद्ध नहीं कर सक्ता और जिसे  
 उनके लिए सिद्ध करना चाहते हैं। ठीक इसी तथ्य में  
 प्रमाण विद्यमान है कि अम विभाजन और विनिमय  
 संपत्ति के ही पहलू है, एक ओर यह कि मानव जीवन  
 अपने मिद्धिकरण के लिए निजी संपत्ति की आवश्यकता  
 और दूसरी ओर यह कि उसे अब निजी संपत्ति के  
 की आवश्यकता है।

अम विभाजन और विनिमय ही के ही परिणामदायक हैं,  
 राजनीतिक धर्मशास्त्री को अपने विज्ञान के सामाजिक  
 की सीधी बंधारने की तरफ ले जाती हैं, जब कि  
 हम यह अपने विज्ञान के अनविरोध—समाज का  
 सामाजिक, विशेष हितों द्वारा अभिप्रेरण—को भी प्रवेतन  
 मय्यक्ति देता है।

हमें दिन कारकों पर विचार करना है वे वे हैं मयने  
 वे, विनिमय करने की प्रवृत्ति—जिनकी बुनियाद स्वायं  
 मिलती है—को अम विभाजन का कारण अववा अभ्योम्य  
 माना जाता है। वेय विनिमा को समाज की प्रवृत्ति  
 लिए आधारभूत नहीं मानते हैं। धन—उत्पादन—की  
 अथवा अम विभाजन और विनिमय में की जाती है। अम  
 भाजन के परिणामस्वरूप वैयक्तिक क्रियाकलाप की परि-







'एभेसवासो टाइमन' मे सेवमपीयर

"मोना ? पीला, जगमग, धनभोल मोना ?

नहीं देवताओ, मैं

बोई निरा उपासक नहीं हूँ !

इतना इसका स्वाद को मफेद, दुने

को भया, मही गजन को, नीच को

धेष्ठ, युवा बूढ़ को,

कायर को वीर बना देगा ।

घरे, यह भी तुम्हारे

पुशगियो और चाकरो को भी

बसल से धमीठ ले जावेगा,

बीरो के मिरो के नीचे से उनके तकिये खींच लेगा

यह पीला राम

घनों को गढेगा और मोटेगा, देगा आजीप

पापियो को, जीर्ण कुष्ठ को पूज्य बना देगा, देगा

बोरी को पद, पदको, प्रतिष्ठा और पीठ पर

सामदो के साथ अनुमोदन यही है

यह, जो जर्जरा, कपिलगान बिधवा को

नवबधू बना देता है ; नभूरी कोडे और धम्पतान

जिसे गढ़े से डाल देंगे, उसे

यह फिर

बामनी मयपीवन और भावण्य देना है ।

धा, धमिशान्त सरती धा,

तू छिनाल सारी दुनिया की

गाय्दो की मण मे जो बँर कराती ।"

भोर भागे भी





ह मैं स्वयं, द्रव्य का धारक हूँ। द्रव्य की शक्ति की सीमा मेरी शक्ति की सीमा है। द्रव्य के गुण मेरे—धारक के—गुण तथा सात्विक शक्तियाँ हैं। इस प्रकार मैं जा हूँ और जलमें मैं समर्थ हूँ, वह किसी भी प्रकार मेरी वैयक्तिकता का नहीं निर्धारित होता है। मैं कुरूप हूँ, लेकिन मैं अपने लिए सुंदरतम स्त्री को खरीद सकता हूँ। इसलिये मैं कुरूप नहीं हूँ, क्योंकि कुरूपता के प्रभाव—उमकी निवारक शक्ति—ने द्रव्य निराकृत कर देना है। अपने वैयक्तिक मक्षणों के अनुसार मैं लगड़ा हूँ, लेकिन द्रव्य मुझे चौबीस पैंग में मुक्त कर देता है। इसलिये मैं लगड़ा नहीं हूँ। मैं बुग, बेरिमान, अरिजहीन, मूछे हूँ, लेकिन द्रव्य का, और इसलिए उसके धारक का, सम्मान किया जाता है। द्रव्य सर्वोच्च समझाई है, इसलिये उसका धारक समझा है। इसके अलावा द्रव्य मुझे बेईमान होने के लक्ष्य में बचाना है—इसलिये मुझे ईमानदार माना जाता है। मैं बेधकल हूँ, लेकिन द्रव्य सभी चीजों की असली धकल है, फिर भी उसका धारक बेधकल कैसे हो सकता है? इसके अलावा वह बुद्धिमानों को खरीद सकता है, और जो बुद्धिमानों पर शक्ति रखता है क्या वह बुद्धिमानों से अधिक बुद्धिमान नहीं है? क्या अपने द्रव्य की वरीयता में उस सबसे समर्थ नहीं है जिसके लिए मानव मन साक्षात्कृत रहता है, क्या मेरे पास मानी मानव समता नहीं है? इसलिये क्या मेरा द्रव्य मेरी समस्त अक्षमताओं को उनके विलोम में नहीं पश्चिन्न कर देना है?

भगर द्रव्य ही मुझे मानव जीवन के साथ साधनवाला, समाज को मेरे साथ जोड़नेवाला, मुझे प्रकृति और मनुष्य के साथ संबद्ध करनेवाला बंधन है, तो क्या द्रव्य समस्त बंधनों का बंधन नहीं है? क्या वह सभी सबंधों को तोड़



डाकगाड़ी\* पकड़ना चाहता हूँ, क्योंकि मुझमें पैदल जाने की शक्ति नहीं है, तो द्रव्य व्यवहन और डाकगाड़ी मुझे दिना देना है। अर्थात् यह मेरी इच्छाओं को कल्पना के क्षेत्र की सीढ़ी में परिवर्तित कर देना है, उन्हें उनके अवहित, कल्पित अथवा वाञ्छित अस्तित्व में उनके इन्द्रियगम्य, वास्तविक अस्तित्व में—कल्पना से जीवन में, कल्पित मत्व में वास्तविक मत्व में—रूपान्वित कर देना है। इस मध्यस्थता की मपन्न करने में [द्रव्य] मध्यमो सृजनात्मक शक्ति है।

बेशक भाग का अस्तित्व उसके लिए भी होना है, जिसके पास द्रव्य नहीं है, लेकिन उसकी भाग मेरे लिए, एक तीसरे पक्ष के लिए, [अन्धो] के लिए बिना किसी प्रभाव अथवा अस्तित्व के मात्र कल्पना की सीढ़ी है, § XLIII। और इसलिए मेरे लिए भी यह अर्थपूर्ण और अस्तित्वपूर्ण रहती है। द्रव्य पर आध्यात्मिक प्रभावी भाग तथा मेरी भावस्यचना, मेरी भावना, मेरी इच्छा, यदि वह आध्यात्मिक प्रभावी भाग के बीच अन्तर ही सत्य तथा विचारण के बीच, मेरे भीतर जो विचार केवल अस्तित्वमान है, उसके और उस विचार के बीच अन्तर है, जो मेरे बाह्य अर्थपूर्ण वस्तु के रूप में अस्तित्वमान है।

अगर मेरे पास यात्रा के लिए द्रव्य नहीं है, तो मुझे यात्रा करने की कोई आवश्यकता—अर्थात् कोई वास्तविक

---

\* यूरोप में रेलों के आगमन के पहले हाक लाने-ले जाने के लिए तेज़ घोड़ागाड़ियों का प्रयोग किया जाता था। इन हाकगाड़ियों में खाली किराया देकर यात्रा भी की जा सकती थी।—स०



शुक्ति मूल्य को विद्यमान तथा मन्त्रिय धारणा के रूप में  
 इन्हीं सभी चीजों को सम्भाल करणा और उत्तमान है।  
 इसलिए यह सभी चीजों का साम संश्रान्तिकरण और उत्तमान—  
 उत्तरी दुनिया—है, समस्त मन्त्रिय तथा मानविक गुणों  
 का सम्भालिकरण और उत्तमान है।

जो जीवों को खरीद सकता है, वह जीव है, चाहे वह  
 जायर क्यों न हो। शुक्ति इन्हीं का निम्नी एक विनिष्ट गुण,  
 निम्नी एक विनिष्ट वस्तु, अथवा निम्नी एक विनिष्ट मानविक  
 मानव शक्ति से नहीं, बल्कि अपने धारक के दृष्टिकोण से  
 समुच्च तथा प्रकृति के समस्त वस्तु जगत से विनिमय किया  
 जाता है। इसलिए यह प्रत्येक गुण का दूसरे, विपरीत तक,  
 गुण तथा वस्तु में विनिमय करने का काम देता है यह  
 सम्भालना ही का सम्भालन है। यह सम्भालना ही का सम्भालन  
 में सम्भालन बढ़ कर देता है।

समुच्च को समुच्च और समस्त के साथ उगरे सम्भाल का  
 मानविक मान लो। तब तुम प्रेम का केवल प्रेम से, विश्वास  
 का केवल विश्वास से ही विनिमय कर सकते हो तथा हमी  
 प्रकार माने भी। तुम क्या का सम्भालन करना चाहते हो,  
 तो तुम्हें वस्तु की दृष्टि में सम्भालित व्यक्ति होना चाहिये,  
 अगर तुम दूसरे लोगों पर समस्त डालना चाहते हो, तो  
 तुम्हें दूसरे लोगों पर प्रेम और प्रोत्साहक प्रभाव डालने-  
 वाला होना चाहिये। समुच्च और प्रकृति के साथ तुम्हारा  
 हर सम्भाल तुम्हारी दृष्टि की, तुम्हारे वास्तविक वैयक्तिक  
 जीवन की वस्तु के समुच्च एक विनिष्ट सम्भालित होना  
 चाहिये। अगर तुम बदले में प्रेम प्रेरित किये बिना प्यार  
 करते हो—अर्थात् अगर प्रेम के नामे तुम्हारा प्रेम समस्त  
 प्रेम नहीं उत्पन्न करता, अगर स्नेही व्यक्ति के नामे स्वयं







(XII)। हेनरी डंगल के मरण में आलोचना की विधि के मरण (काउण्ड, *Synoptiker*) जिनकी वन के रूप में, और उनके आलोचना की विधि के बाद भी यह विधि जिनकी वन आलोचना में पायी, यह काउण्ड जिनकी *Die Kunst der Freiheit* में सिद्ध कर देते हैं, जो बहुत पूर्ण रूप से उद्धार के आशय के हैं - "तो यह तब का है ना?" - जो उन्हें आली आलोचना के हवाले करने कर देते हैं।"

लेकिन अब भी - जब फायरबाख ने *Anekdoten* में अपनी 'Thesen' में \* और विचार से *Philosophie der Zukunft* में भी सिद्धान्त पुराने आलोचना दर्शन का उलट दिया है, जब, दूसरी ओर, उस आलोचना पर ने, जो स्वयं यह सब हासिल करने में प्रभम था, फिर भी इस सबको हासिल होने देख लिया है और सब को विशुद्ध, अद्वय, निरपेक्ष आलोचना घोषित कर दिया है, जिसे स्वयं की पूर्ण स्पष्टता प्राप्त हो गयी है, अब अपने बौद्धिक अहंकार के इस आलोचना ने इतिहास की संपूर्ण प्रक्रिया को शीघ्र जगत तथा स्वयं के बीच संबंध में परिणत कर दिया है (स्वयं के साधने शीघ्र जगत "जलमाधारण" की शक्ति में आता है) और सभी सैद्धांतिक वैयर्थियों को स्वयं अपनी चतुरता और जगत की मूर्खता के अकेले सैद्धांतिक वैयर्थी - आलोचनात्मक क्रीस्ट तथा मानवजाति, "भीड़", के वैयर्थी - में विभक्त कर दिया है, जब हर दिन और

\* Ludwig Feuerbach, 'Vorläufige Thesen zur Reform der Philosophie' in *Anekdoten zur neuesten deutschen Philosophie und Publistik* - ३०



दार्शनिक के रूप में विवेचना है। उनकी उत्पत्ति की धारणा से, धर्म विमर्श धर्म विमर्श करने में बड़ा, फारमाल, जो दुनिया का दम है, उनकी [धर्मों के] विपरीत दृष्टिकोण में मुक्त भी नहीं हो जा सकती है।

फारमाल की महान उत्पत्ति है

(१) यह प्रमाण कि दार्शनिक विचार में परिणत नया विचार प्राग-प्रतिपादित धर्म के, धर्मों मनुष्य के माथ के विशेष के अस्तित्व के लिए धर्म रूप तथा दम के, मित्र धर्म मुक्त नहीं है, धर्म ममान रूप में निरन्तर है।

(२) 'मनुष्य के माथ मनुष्य' के सामाजिक तन्त्र की विवेचना का बुनियादी उद्देश्य बनाने वास्तविक धर्मविचार धर्म विचार विज्ञान की स्थापना,

(३) उनके द्वारा निषेध के निषेध के मुकाबले में, धर्म निषेध प्रत्यक्ष होने का दावा करता है, धर्मनिर्भर प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष स्वयं पर आधारित प्रत्यक्ष को रखा जाता।

फारमाल हेगेलीय दृष्टिकोण की व्याख्या इस प्रकार की है (धर्म उसके द्वारा उन प्रत्यक्ष तन्त्रों से प्रारम्भ करने का धर्म स्थापित करते हैं, जिन्हें हम संवेदनों से जानते हैं)

हेगेल धर्मविचार के विरोध (नवजागरण में, धर्मविचार धर्मविचार धर्मविचार) से - निषेध तथा धर्म धर्मविचार से - प्रारम्भ करते हैं, मनुष्य दम से बड़े, जो इसका मतलब है कि वह धर्म तथा ईश्वरकीमाया से प्रारम्भ करते हैं दूसरे, वह धर्मविचार को धर्म करते हैं धर्म धर्मविचार इतिहास, धर्म, धर्म, धर्म, धर्म को स्थापित करने (दार्शनिक, धर्म तथा ईश्वरकीमाया का निराकरण)।

तीसरे, यह प्रत्यक्ष की फिर निराकरण करने हैं धर्म





३. तर्कबुद्धि। तर्कबुद्धि की निश्चिति और तर्कबुद्धि का  
 त्व। (क) तर्कबुद्धि की एक प्रक्रिया के नाते प्रेरण। प्रकृति  
 और आत्मचेतना का प्रेरण। (ख) तर्कबुद्धिमूलक आत्मचेतना  
 की स्वयं अपनी सक्रियता द्वारा सिद्धि। सुख और आवश्यकता।  
 त्व का नियम और सहकार का वास्तव्य। नेनी और  
 वैदेशी का दर्श। (ग) वैयक्तिकता, जो अपने में और अपने  
 में वास्तविक है। आत्मिक पशुजगत तथा उस अपने वास्तव-  
 के तत्त्व। विधिकार के नाते तर्कबुद्धि। कानूनों का परीक्षण  
 करनेवाली तर्कबुद्धि।

सं. मन।

१. सम्मत् मन, नीतिशास्त्र। २. अपने में वियोजित  
 मन, संसृति। ३. अपने पर आश्रयस्थ मन, नैतिकता।

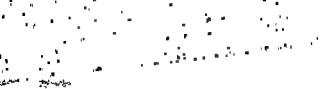
ग. धर्म। नैतिक धर्म। कलात्मक धर्म, धुनिजन्म  
 (राष्ट्रवादी) धर्म।

घ परम ज्ञान।

जुकि हेगेल का *Enzyklopädie* तर्क में, विशुद्ध  
 परिकल्पनात्मक चिंतन से शुरू होता है और परम ज्ञान के  
 साथ-आत्मचेतन, आत्मबोधवाही दार्शनिक अपने परम  
 (वर्तमान) समूर्त मन के साथ खत्म होता है, इसलिए  
 वह अपनी समग्रता में दार्शनिक मन के सार के प्रदर्शन,  
 आत्मवस्तुकरण के अभाव और कुछ भी नहीं है और दार्श-  
 निक मन अपने आत्मनिबोधन के भीतर साधने-अर्थात् अपने

\* Georg Wilhelm Friedrich Hegel, *Enzyklopädie der philo-  
 sophischen Wissenschaften in Grundrisse.*—मं०







गहरे गहरे नेवन चेतना में, शुद्ध विचार में, सर्वोच्च  
 में होनेवाला विनियोजन ही है। यह इन वस्तुओं  
 विचारों के नाने और विचारों की गतियों के नाने विधि  
 है। फलतः अपने पूर्णतः नकारात्मक तथा मानवीय  
 स्वरूप के बावजूद और अपने में समाविष्ट वास्तविक  
 घना के बावजूद, जो प्रायः कही जादवाने विचार  
 पूर्वानुमान कर लेती है, *Phänomenologie* के  
 की उत्तरवर्ती इतियाँ का मनालोचनात्मक प्रत्यक्षता  
 इतना ही मनालोचनात्मक प्रत्यक्षता—विद्यमान है  
 भाविक जगत का यह दार्शनिक विषय तथा पुनः  
 पहले ही एक सम्भाव्यता, एक चेद, एक क्षेत्र के  
 भवित्व है।

दूसरे: मनुष्य के लिए वस्तुगत जगत का प्रमाणी  
 उपाहरण के लिए यह समझ कि इंद्रियगम्य चेतना  
 सम्पूर्ण रूप में इंद्रियगम्य चेतना नहीं है, बल्कि मानव  
 में इंद्रियगम्य चेतना है, और यह कि धर्म, धन, धादि  
 वस्तुकरण का, नाम में लगायी गयी मनुष्य की  
 शक्तियों का विनियोजित जगत मात्र है और यह कि  
 वे सच्चे मानव जगत का रूप मात्र है—यह स्वीकरण  
 इस प्रक्रिया में अतर्द्धि हेतु में इसलिए इस रूप में  
 होती है कि सचेत, धर्म, राज्यसत्ता, धादि मानविक  
 है; कारण कि केवल मन ही मनुष्य का वास्तविक है  
 और मन का सच्चा रूप चित्तमयीत मन, तार्किक, पर  
 मन है। प्रकृति का और इतिहास द्वारा सृजित प्र  
 मनुष्य के उत्पादों—का मानव स्वरूप इस रूप में  
 होता है कि वे सम्पूर्ण मन के उत्पाद हैं और इतिहास  
 हैसियत से मन की कक्षा—विचार-सत्ता—है। इ





मनुष्य का सार, जो कमीटी पर खरा उतरता है वह धर्म के केवल सकारात्मक पहलु को देखने है, नकारात्मक को नहीं। धर्म इतरीभवन के भीतर, अथवा इतरीभूत मनुष्य के रूप में मनुष्य का अपने लिए हो जाना है। हेगेल जिस चीज़ को धर्म को जानने और मानने है, वह अमूर्त रूप में मानसिक धर्म है। अतः जो दर्शन का सार बनाना है - अपने को जाननेवाले मनुष्य का इतरीभवन, अथवा स्वयं चिन्तन करता इतरीभूत विज्ञान - उसे हेगेल धर्म का सार समझते हैं, और इसलिए पूर्ववर्ती दर्शन के विपरीत वह उनके विभिन्न पहलुओं का मयोग कर मचने हैं और अपने दर्शन को वास्तविक दर्शन की तरह प्रस्तुत कर सकते हैं। अम्य दार्शनिकों ने जो विद्या था - वह कि वे प्रकृति की और मानव जीवन की पृथक वस्तुओं को आत्मचेतना की, अर्थात् अमूर्त आत्मचेतना की, बनाए समझते थे - वह हेगेल को दर्शन के कार्यों के रूप में ज्ञात है। अतः उनका विज्ञान परम है।

आइये, अब अपने विषय पर सीट आये।

‘परम ज्ञान’। *Phänomenologie* का अंतिम अध्याय।

मुख्य ज्ञान यह है कि [हेगेल के अनुसार] चेतना की वस्तु आत्मचेतना के बिना और कुछ भी नहीं है, अथवा यह कि वस्तु केवल वस्तुहस्त आत्मचेतना - वस्तु के रूप में आत्मचेतना - ही है। (मनुष्य का उपन्यासन = आत्मचेतना)।

इसलिए समस्या चेतना की वस्तु पर पार पाने की है। अपने में वस्तुरूपता को एक वियोजित मानव सबंध समझा जाता है, जो मनुष्य के सार के, आत्मचेतना के, अनुरूप नहीं है। इसलिए वियोजन की परिधि ने भीतर एक इतर चीज़ की तरह उत्पन्न मनुष्य के वस्तुरूप सार का पुनर्वि-



वर्षा प्रतीत होता है—घपनी अंतरराज्य, प्रच्छन्न प्रकृति (जिसे दर्शन मात्र प्रकाश में लाता है) के अनुसार यथार्थ मानव सार के, आत्मचेतना के वियोजन के प्रकटीकरण के अभाव और कुछ नहीं है। इसलिए इसका बोध प्राप्त करना विज्ञान सवृत्तिशास्त्र [सांयुक्तिकी—अथवा दृश्यघटनाविज्ञान (phenomenology)] कहलाता है। अतएव वियोजित वस्तुस्य सार का समस्त पुनर्विनियोजन आत्मचेतना में समावेश प्रतीत होता है। अपने तात्त्विक सत्त्व को नियंत्रण में ले लेनेवाला आदमी मात्र आत्मचेतना है, जो वस्तुस्य सार को नियंत्रण में ले लेती है। अतः वस्तु का आत्म में प्रत्यावर्तन वस्तु का पुनर्विनियोजन है।

अपने सभी पहलुओं में व्यक्त करने पर चेतना की वस्तु पर चार पाने का मतलब है.

(१) कि अपने में वस्तु स्वयं को चेतना के समक्ष किसी विरोधाधी चीज की तरह देख करती है।

(२) कि यह आत्मचेतना का इतरीमवन है, जो वस्तुत्व<sup>५५</sup> को कल्पित करता है।

(३) कि इस इतरीमवन का केवल सकारात्मक ही नहीं, बल्कि सकारात्मक महत्व भी है।

(४) कि इसका यह मतलब केवल हमारे लिए या अनर्हित रूप में ही नहीं है, बल्कि स्वयं आत्मचेतना के लिए है।

(५) आत्मचेतना के लिए वस्तु का निषेध, अथवा उसका स्वयं को निराकृत करना इस तथ्य के कारण सकारात्मक महत्व रखता है—अथवा यह वस्तु की इस व्यर्थता को जानती है—कि यह अपने को इतरीभूत करती है, क्योंकि इस इतरीमवन में यह स्वयं की वस्तु की तरह कल्पना करती



अपने एक तात्त्विक वस्तु, यान उसका वस्तुरूप मात्र, है।  
 और चूँकि जिसे अपने में निषेधी बनाया जाना है, वह  
 वास्तविक मनुष्य नहीं है और पलन न प्रकृति ही है—  
 क्योंकि मनुष्य तो मानव प्रकृति है—बल्कि केवल मनुष्य का  
 समूर्त रूप, आत्मचेतना, ही है, इसलिए वस्तुत्व इतरीभूत  
 आत्मचेतना के असावा और कुछ नहीं हो सकता है)। यह  
 आभासिक ही है कि यथार्थ (अर्थात् भौतिक) तात्त्विक  
 अभियो में युक्त और मयन मजीब, प्राकृतिक मत्व की  
 अपने सार की यथार्थ प्राकृतिक वस्तुएँ हैं, और यह कि  
 उनका आत्म-इतरीमयन एक यथार्थ, वस्तु जगल का, लेकिन  
 बाह्यता की सीमाओं के भीतर, और इसलिए एक अव्यय  
 जगल का कल्पित करने की तरफ से जाये, जो स्वयं उनके  
 तात्त्विक मत्व का नहीं है। हमने कुछ भी अवबोधगम्य अथवा  
 रहस्यमय नहीं है। बल्कि अगर यह अव्ययता होता, तो यह  
 रहस्यमय हुआ होता। लेकिन यह इतना ही स्पष्ट है कि  
 अपने इतरीमयन से आत्मचेतना केवल वस्तुत्व का ही, अर्थात्  
 केवल एक समूर्त वस्तु की ही, समूर्तकरण की चीज की ही,  
 न कि यथार्थ वस्तु की, कल्पित कर सकती है। हमने  
 [XXVI]<sup>40</sup> असावा, यह स्पष्ट है कि केवल वस्तुत्व  
 आत्मचेतना की भाष्यता में स्वतंत्रता से, तात्त्विकता में  
 सर्वथा रहित है, कि हमने विपरीत वह मात्र एक स्पष्ट—  
 आत्मचेतना द्वारा कल्पित चीज ही है। और जो अपने को  
 स्पष्ट करने के बजाय कल्पित है, वह कल्पित करने के कार्य  
 का पुष्टिकरण मात्र है, जो निमित्त मात्र के लिए अपनी  
 ऊर्जा को उत्पाद के रूप में स्थिर कर देता है और उसे—  
 किन्तु निमित्त मात्र के लिए ही—एक स्वतंत्र, वास्तविक  
 पदार्थ का आभास दे देता है।





